

तत्रैकस्याप्यमावतोऽसुमतां मरणसंदर्शनाच्च। अपि तच्छ्वासमनोवचसां न प्राणव्यपदेशो युज्यते, तान्यन्तरेणापि अपर्याप्तावस्थायां जीवनोपलम्भादिति चेन्न, तैर्विना पश्चाज्जीवतामनुपलम्भतस्तेषामपि प्राणत्वाविरोधात् । उक्तं च --

बाहिर-पाणेहि जहा तहेव अब्भतरेहि पाणेहि ।

जीवन्ति जेहि जीवा पाणा ते होंति बोध्दवा१ (प्रा. पं. १, ४५। गो. जी. १२९. तत्र 'जीवन्ति' इति स्थाने 'प्राणन्ति' इति पाठः। पौद्गलिकद्रव्येन्द्रियादिव्यापाररूपाः द्रव्यप्राणाः। तन्निमित्तभ इ ानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमादिविजृम्भितचेतनव्यापाररूपा भावप्राणाः। जी. प्र. टी.) ॥१४१॥  
पर्याप्तिप्राणानां नास्मि विप्रतिपत्तिर्न वस्तुनि इति चेन्न, कार्यकारणयोर्भेदात्, पर्याप्तिष्वायुषोऽसत्त्वान्मनोवागुच्छ्वासप्राणानामपर्याप्तिकालेऽसत्त्वाच्च तयोर्भेदात्। तत्पर्याप्तयोऽप्यपर्याप्तकाले न सन्तीति तत्र तदसत्त्वमिति चेन्न, अपर्याप्तरूपेण तत्र तासां सत्त्वात्। किमपर्याप्तरूपमिति चेन्न, पर्याप्तिनामर्धनिष्पन्नावस्था अपर्याप्तिः, ततोऽस्ति तेषां भेद इति। अथवा जीवनहेतुत्वं तत्स्थमनपेक्ष्य शक्तिनिष्पत्तिमात्रं

समाधान -- नहीं, क्योंकि, उच्छ्वास, मनोबल और वचनबलके विना अपर्याप्त अवस्थाके पश्चात् पर्याप्त अवस्थामें जीवन नहीं पाया जाता है, इसलिये उन्हें प्राण माननेमें कोई विरोध नहीं आता है । कहा भी है

जिस प्रकार नेत्रोंका खोलना, बन्द करना, वचनप्रवृत्ति, आदि बाह्य प्राणोंसे जीव जीते है, उसी प्रकार जिन अभ्यन्तर इन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमादिके द्वारा जीवमें जीवितपनेका व्यवहार हो उनको प्राण कहते हैं ॥१४१॥

शंका -- पर्याप्ति और प्राणके नाममें अर्थात् कहनेमात्रमें विवाद है, वस्तुमें कोई विवाद नहीं है, इसलिये दोनोंका तात्पर्य एक ही मानना चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, कार्य और कारणके भेदसे उन दोनोंमें भेद पाया जाता है तथा पर्याप्तियोंमें आयुका सद्भाव नहीं होनेसे और मनोबल, वचनबल, तथा उच्छ्वास इन प्राणोंके अपर्याप्ति कालमें नहीं पाये जानेसे पर्याप्ति और प्राणमें भेद समझना चाहिये ।

शंका -- वे पर्याप्तियां भी अपर्याप्त कालमें नहीं पाई जाती हैं, इसलिये अपर्याप्त कालमें उनका सद्भाव नहीं रहेगा?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, अपर्याप्त कालमें अपर्याप्तरूपसे उनका सद्भाव पाया जाता है।

शंका -- अपर्याप्तरूप इसका क्या तात्पर्य है?

पर्याप्तिरुच्यते, जीवनहेतवः पुनःप्राणा इति तयोर्भेदः१ (आहारभाषामनोवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां खलरसभागशरीरावयवरूपद्रव्येन्द्रियरूपोच्छ्वासनिश्वा-

सरूपभाषारूपद्रव्यमनोरूपपरिणमनकारणात्मकशक्तिनिष्पत्तयः पर्याप्तयः,

स्वार्थग्रहणव्यापारकायवाग्व्यापारो-च्छ्वासनिश्वासप्रवृत्तिभवधारणरूपजीवव्यवहारकारणात्मशक्तिविशेषाः

प्राणा इति भिन्नलक्षणलक्षितत्वात्पर्याप्तिप्राणयोर्भेदप्रसिद्धेः ॥ गो. जी., मं. प्र., टी. १३१.)

एकेन्द्रियाणां भेदमभिधाय साम्प्रतं व्दीन्द्रियादीनां भेदमभिधातुकाम उत्तरसूत्रमाह -

बीइंदिया दुविहा-पज्जता अपज्जता। तीइंदिया दुविहा---पज्जताअपज्जता। चउरिंदिया दुविहा-पज्जता अपज्जता। पंचिंदिया दुविहा-सण्णी असण्णी। सण्णी दुविहा-पज्जता अपज्जत। असण्णी दुविहा-पज्जता अपज्जता चेदि ॥३५॥

व्दीन्द्रियादय उक्तार्था इति पुनरुक्तभयात्पुनस्तेषां नेहार्थ उच्यते। अथ स्यादेतस्य एतावन्त्येवेन्द्रियाणीति कथमवगम्यते इति चेन्न, आर्षात्तदवगतेः । किंतदार्षमिति चेदुच्यते -

समाधान -- पर्याप्तियोंकी अपूर्णताको अपर्याप्ति कहते हैं, इसलिये पर्याप्ति, अपर्याप्ति और प्राण इनमें भेद सिद्ध हो जाता है। अथवा, इन्द्रियादिमें विद्यमान जीवनके कारणपनेकी अपेक्षा न करके इन्द्रियादिरूप शक्तिकी पूर्णतामात्रको पर्याप्ति कहते हैं और जो जीवनके कारण हैं उन्हें प्राण कहते हैं। इस प्रकार इन दोनोंमें भेद समझना चाहिये।

इस प्रकार एकेन्द्रियोंके भेद प्रभेदोंका कथन करके अब व्दीन्द्रियादिक जीवोंके भेदोंका कथन करनेकेइच्छुक आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं -

व्दीन्द्रिय जीव दो प्रकारकेहैं- पर्याप्तक और अपर्याप्तक। त्रीन्द्रिय जीव दो प्रकारकेहैं- पर्याप्तक और अपर्याप्तक। चतुरिन्द्रिय जीव दो प्रकारकेहैं- पर्याप्तक और अपर्याप्तक। पंचेन्द्रिये जीव दो प्रकारके

हैं- संज्ञी और असंज्ञी। संज्ञी जीव दो प्रकारके हैं- पर्याप्तक और अपर्याप्तक। असंज्ञी जीव दो प्रकारके हैं- पर्याप्तक और अपर्याप्तक।।३५।।

व्दीन्द्रिय आदि जीवोंका स्वरूप पहले कह आये हैं, इसलिये पुनरुक्त दूषणके भयसे फिरसे यहां नहीं कहते हैं।

शंका -- इस जीवके इतनी ही इन्द्रियां होती हैं, यह कैसे जाना?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, आर्षसे इस बातको जाना।

शंका -- वह आगम कौनसा है?

-----  
एइंदियस्य फुसणं एकं च य होइ सेस-जीवाणं ।

होंति कम-वडिढयाइं जिब्भा-घाणक्खि-सोत्ताइं १ ( प्रा. पं. १, ६७ । गो. जी. १६७.)<sup>६</sup> १४२ अस्य सूत्रस्यार्थ - उच्यते स्पर्शनमेकमेव एकेन्द्रियस्य भवति २ ( वनस्पत्यन्तानामेकम् । त. सू. २. २२. ), स्पर्शनरसने व्दीन्द्रियस्य, स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियाणि त्रीन्द्रियाणाम्, तानि सचक्षुषि चतुरिन्द्रियाणाम्, स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियाणि पञ्चेन्द्रियाणमिति। अथवा 'कृमिपिपीलिका-भ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ३ (त. सू. २.२३.)' इति अस्मात्तत्त्वार्थसूत्राव्दावसीयते । अस्यार्थ उच्यते - एकैकं वृद्धं येषां तानीमानि एकैकवृद्धानि । ' वनस्पत्यन्तानामेकम् ' इत्येतस्मात्सूत्रात्स्पर्शनमित्यनुवर्तते । तत एवमभिसंबध्यते - स्पर्शनं रसनवृद्धं कृम्यादीनाम्, स्पर्शनरसने घ्राणवृद्धे पिपीलिकादीनाम्, स्पर्शनरसनघ्राणानि चक्षुर्वृद्धानि भ्रमरादीनाम् तानि श्रोत्रवृद्धानि मनुष्यादीनामिति ४ (पाठोऽयं त. रा. वा. २.२३ वा. २-४ व्याख्यया समानः।)<sup>६</sup>

समनस्का : संज्ञिनः, अमनस्का असंज्ञिन इति ५ (मु. समनस्का: संज्ञिन इति।)<sup>६</sup> मनो द्विविधम्-द्रव्यमनो

-----  
समाधान -- एकेन्द्रिय जीवके एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है, और शेष जीवोंके क्रमसे बढ़ती हुई जिह्वा, घ्राण, अक्षि और श्रोत्र इन्द्रियाँ होती हैं ।।१४२।।

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- एकेन्द्रिय जीवके एक स्पर्शन इन्द्रिय, द्वीन्द्रिय जीवके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियाँ, त्रीन्द्रिय जीवके स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ, चतुरिन्द्रिय जीवके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियाँ और पंचेन्द्रिय जीवके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाँच इन्द्रियाँ होती हैं। अथवा तत्त्वार्थसूत्रके कृमिपिपीलिका-भ्रमरमनुष्यदीनामेकैकवृद्धानि' इस सूत्रसे यह जाना जाता है कि किस जीवके कितनी इन्द्रियाँ होती हैं। अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं -

एक एक इन्द्रियका बढता हुआ क्रम जिन इन्द्रियोंका पाया जावे, ऐसी एक एक इन्द्रियके बढते हुए क्रमरूप पांच इन्द्रियाँ होती हैं। 'वनस्पत्यन्तानामेकम्' इस सूत्रमेंसे स्पर्शन पदकी अनुवृत्ति होती है, इसलिये ऐसा संबन्ध कर लेना चाहिये कि क्रमि आदि द्वीन्द्रिय जीवोंके स्पर्शनके साथ रसना इन्द्रिय और अधिक होती है। पिपीलिका आदि त्रीन्द्रिय जीवोंके स्पर्शन और रसनाके साथ घ्राण इन्द्रिय और अधिक होती है। भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीवोंके स्पर्शन, रसना और घ्राणके साथ चक्षु इन्द्रिय और अधिक होती है। मनुष्य आदि पंचेन्द्रिय जीवोंके स्पर्शन, रसना, घ्राण, और चक्षुके साथ श्रोत्र इन्द्रिय और अधिक होती है।

मनसहित जीवोंको संज्ञी कहते हैं। मन दो प्रकारका है- द्रव्यमन और भावमन। उनमें पुद्गलविपाकी आंगोपांग नामकर्मके उदयकी अपेक्षा रखनेवाला द्रव्यमन है। तथा

-----

भावमन इति। तत्र पुद्गलविपाकिकर्मोदयापेक्षं द्रव्यमनः१ (स. सि. २.११। त. रा. वा. २.११ द्रव्यमनश्च ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमाङ्गोपाङ्ग-लाभप्रत्ययाः गुणदोषविचारस्मरणादिप्राणेषुध्यानस्याभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहकाः पुद्गला परिणता इति पौद्गलिकम्। स. सि. ५.११। त. रा. वा. ५.११.)। वीर्यान्तरायनोऽन्द्रिया-वरणक्षयोपशमापेक्षात्मनो विशुद्धिर्भावसनः २ (स. सि. २. ११। त. रा. वा. २.११, भावमनस्तावल्लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलावलम्बनत्वा- त्पौद्गलिकम्। स. सि. ५.११। त. रा. वा. ५.११.)<sup>६</sup> तत्र भावेन्द्रियाणामिव भावमनस उत्पत्तिकाल एव सत्त्वादपर्याप्तकालेऽपि भावमनसः सत्त्वामिन्द्रियाणामिव किमिति नोक्तमिति चेन्न, बाह्येन्द्रियैरग्राह्यद्रव्यस्य मनसोऽपर्याप्तवस्थायामस्तित्वेऽङ्गीक्रिय-माणे द्रव्यमनसो विद्यमाननिरूपणस्यासत्त्वप्रसङ्गात्। पर्याप्तिनिरूपणतस्तदस्तित्वं ३ (मु. निरूपणात्तदस्तित्वं।) सिद्धयेदिति चेन्न, ब्राह्मार्थस्मरणशक्तिनिष्पत्तेः

पर्याप्तिव्यपदेशतो द्रव्यमनसोऽभावेऽपि पर्याप्तिनिरूपणोपपत्तेः। न ब्राह्मार्थस्मरणशक्तेः प्रागस्तित्वम्ः योगस्य द्रव्यस्योत्पत्तेः प्राक् सत्त्वविरोधात्। ततो द्रव्यमनसोऽस्तित्वस्य ज्ञापकं भवति तस्यापर्याप्त्यवस्थायामस्तित्वानिरूपणमिति सिद्धम्। मनस इन्द्रियव्यपदेशः किन्न कृत चेन्न, इन्द्रस्य

-----

वीर्यान्तराय और नो-इन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमके निमित्तसे आत्मामें जो विशुद्धि पैदा होती है वह भावमन है।

शंका -- जीवके नवीन भवको धारण करनेके समय ही भावनेन्द्रियोंकी तरह भावमनका भी सत्त्व पाया जाता है, इसलिये जिस प्रकार अपर्याप्त कालमें भावनेन्द्रियोंका सद्भाव कहा जाता है उसी प्रकार वहां पर भावमनका सद्भाव क्यों नहीं कहा?

समाधान -- नहीं क्योंकि, बाह्य इन्द्रियोंके द्वारा जिसके द्रव्यका ग्रहण नहीं होता ऐसे मनका अपर्याप्तिरूप अवस्थामें अस्तित्व स्वीकार कर लेनेपर, जिसका निरूपण विद्यमान है ऐसे द्रव्यमनके असत्त्वका प्रसंग आ जायगा।

शंका -- पर्याप्तिके निरूपणसे ही द्रव्यमनका अस्तित्व सिद्ध हो जायगा?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, बाह्यार्थकी स्मरणशक्तिकी निष्पत्तिकी पर्याप्ति संज्ञा होनेसे द्रव्यमनके अभावमें भी पर्याप्तिका निरूपण बन जाता है। बाह्य पदार्थोंको स्मरणकी शक्तिके पहले द्रव्यमनका सद्भाव बन जायगा ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, द्रव्यमनके योग्य द्रव्यकी उत्पत्तिके पहले उसका सत्त्व मान लेनेमें विरोध आता है। अतः पर्याप्तिरूप अवस्थामें भावमनके अस्तित्वका निरूपण नहीं करना द्रव्यमनके अस्तित्वका ज्ञापक हैं यह सिद्ध होता है।

शंका -- मनको इन्द्रिय संज्ञा क्यों नहीं दी गई?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, इन्द्र अर्थात् आत्माके लिंगको इन्द्रिय कहते हैं। जिसके

-----

लिङ्गमिन्द्रियम्१ (स. सि. १,१४.) उपभोक्तुरात्मनोऽनिवृत्तकर्मसम्बन्धस्य परमेश्वरशक्तियोगादिन्द्रियपदेशमर्हतः स्वयमर्थान् गृहीतमसमर्थस्योपयोगोपकरणं लिङ्गमिति कथ्यते २ (इन्द्र आत्मा, तस्य कर्ममलीमसस्य स्वयमर्थान् गृहीतुमसमर्थस्यार्थोपलम्भने यल्लिङ्गतदिन्द्रिय मित्युच्यते। त. रा. वा. १.१४.१.) न च मनः ३ (मु. मनसः।) उपयोगोपकरणमस्ति। द्रव्यमन उपयोगोपकरणमस्तीति चेन्न,

शेषेन्द्रियाणामिव बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वाभावतस्तस्येन्द्रलिङ्गत्वानुपपत्तेः (स. सि. १.१४। त. रा. वा. १.१४.२. अनयोर्व्याख्या विशेषपरि ज्ञानायानुसन्धेया।)९ अथ स्यादर्थालोकमनस्कार-चक्षुर्भ्यः सम्प्रवर्तमानं रूपज्ञानं समनस्केषूपलभ्यते, तस्य कथममनस्केष्वविर्भाव इति नैष दोषः, भिन्नजातित्वात् ।

इन्द्रियेषु गुणस्थानानामियत्ताप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया असण्णिपंचिंदिया एकस्मि चव मिच्छाइइण्डि-इण्डाणे ५ ( इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियादिषु चतुरिन्द्रियपर्यन्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्। असंज्ञिषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्। स. सि. १.८.२. अ.ब. प्रतौ मिच्छाइइण्डिणो।।) ॥३६॥

कर्मोको संबन्ध दूर नहीं हुआ है, जो परमेश्वररूप शक्तिके संबन्धसे इन्द्र संज्ञाको धारण करता है, परंतु जो स्वतः पदार्थोको ग्रहण करनेमें असमर्थ है ऐसे उपभोक्ता आत्माके उपयोगके उपकरणको लिंग कहते हैं। परंतु मन उपयोगका उपकरण नहीं है, इसलिये मनको इन्द्रिय संज्ञा नहीं दी गई।

शंका -- उपयोगका उपकरण द्रव्यमन तो है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जिस प्रकार शेष इन्द्रियोंका बाह्य इन्द्रियोंसे ग्रहण होता है उस प्रकार मनका नहीं होता है, इसलिये उसे इन्द्रका लिंग नहीं कह सकते हैं।

शंका -- पदार्थ, प्रकाश, मन और चक्षु इनसे उत्पन्न होनेवाला रूप-ज्ञान समनस्क जीवोंमें पाया जाता है, यह तो ठीक है। परंतु अमनस्क जीवोंमें उस रूप-ज्ञानकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, समनस्क जीवोंके रूप-ज्ञानसे अमनस्क जीवोंका रूप-ज्ञान भिन्न जातीय है।

अब इन्द्रियोंमें गुणस्थानोंकी निश्चित संख्याके प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टि नामक प्रथम गुणस्थानमें ही होते हैं ॥३६॥

एकस्मिन्नेवेति विशेषणं व्दद्यादिसंख्यानिराकरणार्थम् । शेषगुणस्थाननिरसनार्थ मिथ्यादृष्ट्यपादानम् । एइंदिएसु सासणगुणइण्डाणं पि सुणिज्जदि, तं कधं घडदे ? ण, एदमिह सुत्ते तस्स णिसिध्दत्तादो १ (येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते x x स. सि. १.८ जे पुण देवसासणा

एइंदिएसुप्पज्जंती ति मणंति तेसिमहिप्पाएण बारहचोदसभागा देसूणा उववादफोसणं होदि, एदं पि वक्खाणं संतदव्वसुत्तविरुद्धं ति ण घेतत्वं । धवला अ. पृ. २६०.) । विरुद्धत्थाणं कधं दोण्हं पि सुत्तत्तणमिदि ण, दोण्हे एक्कदरस्स सुत्तत्तादो २ ( अ. ब. सुत्तादो । ) । दोण्हं मज्झे इदं सुत्तमिदं च ण भवदीति कधं णव्वदि ? उवदेसमंतरेण तदवगमाभावादो दोण्हं पि संगहो कायव्वो । दोण्हं संगहं करंतो संसय-मिच्छाइड्डी होदि ति, तण्ण, सुत्तुद्धिमेव अत्थि ति सद्धहंतस्स संदेहाभावादा । उत्तं च --

सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्धहदि ।

सो चेय हवदि मिच्छाइड्डी हु तदो पड्डि जीवो ३ ( गो. जी. २९. )

॥१४३॥

दो, तीन आदि संख्याके निराकरण करनेके लिये सूत्रमें एक पदका ग्रहण किया है। तथा अन्य गुणस्थानोंके निराकरण करनेके लिये मिथ्यादृष्टि पदका ग्रहण किया है।

शंका -- एकेन्द्रिय जीवोंमें सासादन गुणस्थान भी सुननेमें आता है, इसलिये उनके केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके कथन करनेसे वह कैसे बन सकेगा?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, इस खंडागम-सूत्रमें उनके सासादन गुणस्थानका निषेध है ।

शंका -- जब कि दोनों वचन परस्पर विरोधी हैं तो उन्हें सूत्रपना कैसे प्राप्त हो सकता है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, दोनों वचन सूत्र नहीं हो सकते हैं, किंतु उन दोनों वचनोंमेंसे किसी एक वचनको ही सूत्र प्राप्त हो सकता है ।

शंका -- दोनों वचनोंमें यह वचन सूत्ररूप है, और यह नहीं, यह कैसे जाना जाय?

समाधान -- उपदेशके विना दोनोंमेंसे कौन वचन सूत्ररूप है, यह नहीं जाना जा सकता है, इसलिये दोनों वचनोंका संग्रह करना चाहिये ।

शंका -- दोनों वचनोंका संग्रह करनेवाला संशय-मिथ्यादृष्टि हो जायगा?

समाधान -- नहीं क्योंकि, संग्रह करनेवालेके 'यह सूत्रकथित ही है' इस प्रकारका श्रद्धान पाया जाता है, अतएव उसके संदेह नहीं हो सकता है । कहा भी है ---

सूत्रके आचार्यादिके द्वारा भलेप्रकार समझाये जानेपरभी यदि जीव विपरीत अर्थको छोडकर समीचीन अर्थका श्रद्धान नहीं करता है, तो उसी समयसे वह जीव मिथ्यादृष्टि हो जाता है ॥१४३॥

-----  
पञ्चेन्द्रियप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह---

पंचिंदिया असण्णिपंचिंदिय-प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ।। ३७ ।।

पञ्चेन्द्रियेषु गुणस्थानसंख्यामप्रतिपाद्य किमिति असंज्ञिप्रभृतयः पञ्चेन्द्रिया इति प्रतिपादितमिति चेन्नैष दोषः, असंज्ञादयोऽयोगिकेवलिपर्यन्ताः पञ्चेन्द्रिया इत्यभिहितेऽपि पञ्चेन्द्रियेषु गुणस्थानानामियत्तावगतेः। अथ स्यादां-संज्ञादयोऽयोगि-केवलिपर्यन्ताः किमु पञ्चन्द्रव्येन्द्रियवन्त उत भावेन्द्रियवन्त इति? न तावादादिविकल्पः, अपर्याप्तजीवैर्व्यभिचारात्। न द्वितीयविकल्पः, केवलिभिर्य्यभिचारादिति? नैष दोषः, भावेन्द्रियतः पञ्चेन्द्रियत्वाभ्युपगमात्। न पूर्वोक्तदोषोऽपि, केवलानां निर्मूलतो विनष्टान्तरङ्गेन्द्रियाणां प्रहतबाह्येन्द्रियव्यापाराणां भावेन्द्रियजनितद्रव्येयसत्त्वा

-----  
पंचन्द्रियोमें गुणस्थानोंकी संख्याकेप्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहत हैं ---

असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक पंचेन्द्रिय जीव होते हैं ।।३७।।

शंका -- पंचेन्द्रिय जीवोंमें गुणस्थानोंकी संख्याका प्रतिपादन नहीं करकेअसंज्ञी आदिक पंचेन्द्रिय होते हैं, ऐसा क्यों कहा?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, असंज्ञीको आदि लेकर अयोगिकेवली पर्यन्त पंचेन्द्रिय जीव होते हैं, ऐसा कथन कर देनेपरही पंचेन्द्रियोंमें गुणस्थानोंकी संख्याका ज्ञान हो जाता है।

शंका -- असंज्ञीसे लेकर अयोगिकेवलीतक पंचेन्द्रिय जीव होते हैं यह ठीक है, परंतु वे क्या पांच द्रव्येन्द्रियोंसे युक्त होते हैं या पांच भावेन्द्रियोंसे युक्त होते हैं? इनमें से प्रथम विकल्प तो बन नहीं सकता, क्योंकि, उसके मान लेनेपर अपर्याप्त जीवोंके साथ व्यभिचार दोष आता है। अर्थात् अपर्याप्त जीव पंचेन्द्रिय होते हुए भी उनकेद्रव्येन्द्रियाँ नहीं पाई जाती, इसलिये व्यभिचार दोष आता है। इसी प्रकार दूसरा विकल्प भी नहीं बनता, क्योंकि, उसके मान लेनेपर केवलियोंसे व्यभिचार दोष आता है। अर्थात् केवली पंचेन्द्रिय होते हुए भी उनकेभावेन्द्रियाँ नहीं पाई जाती हैं, इसलिये व्यभिचार दोष आता है?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यहाँपर भावेन्द्रियोंकी अपेक्षा पंचेन्द्रियपना स्वीकार किया है। और ऐसा मान लेनेपर पूर्वोक्त दोष भी नहीं आता है, क्योंकि, केवलियोंके यद्यपि भावेन्द्रियाँ

समूल नष्ट हो गई हैं, और बाह्य इन्द्रियोंका व्यापार भी बन्द हो गया है, तो भी ( छद्मस्थ अवस्थामें ) भावेन्द्रियोंके निमित्तसे उत्पन्न हुई द्रव्येन्द्रियोंके

-----

पेक्षया पञ्चेन्द्रियत्वप्रतिपादनात्, भूतपूर्वगतिन्यायसमाश्रयणाद्धा । सर्वत्र निश्चयनयमाश्रित्य प्रतिपाद्य अत्र व्यवहारनयः किमित्यवलम्ब्यते इति चेन्नैष दोषः, मन्दमेध-सामनुग्रहार्थत्वात् । अथवा नेदं व्याख्यानं समीचीनम् दूरधिगमत्वात्, इन्द्रियप्राणैरस्य पौनरुक्त्यप्रसङ्गात् किमपरं व्याख्यानमिति चेदुच्यते । एकेन्द्रियजातिनामकर्मोदया-देकेन्द्रियः, व्दीन्द्रियजातिनामकर्मोदयाद् व्दीन्द्रियः, त्रीन्द्रियजातिनामकमादयात्त्रीन्द्रियः, चतुरिन्द्रियजातिनामकर्मोदयाच्चतुरिन्द्रियः, पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्मोदयात्पञ्चेन्द्रियः, समस्ति च केवलिनामपर्याप्तजीवानां च पञ्चेन्द्रियजातिरिति किं? यस्याः पारापतादयो जातिविशेषाः समानप्रत्ययग्राह्याः सा पञ्चेन्द्रियजातिः पञ्चेन्द्रियक्षयोपशमस्य सहकारित्वमादधाना ।

अतीन्द्रियजीवास्तित्वप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

तेण परमणिंदिया इदि ॥३८॥

-----

सद्भावकी अपेक्षा उन्हें पंचेन्द्रिय कहा गया है । अथवा भूतपूर्वका ज्ञान करानेवाले न्यायके आश्रयसे उन्हें पंचेन्द्रिय कहा है ।

शंका -- सब जगह निश्चय नयका आश्रय लेकर वस्तु-स्वरूपका प्रतिपादन करनेके पश्चात् फिर यहां पर व्यवहार नयका आलम्बन क्यों लिया जा रहा है?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, मन्दबुद्धि, शिष्योंके अनुग्रहके लिये उक्तप्रकारसे कथन किया है । अथवा, उक्त व्याख्यानको ठीक नहीं समझना, क्योंकि, मन्दबुद्धि शिष्योंके लिये यह व्याख्यान दुरवबोध है । दूसरे इन्द्रिय प्राणोंके साथ इस कथनका पुनरुक्त दोष भी आता है ।

शंका -- तो फिर वह दूसरा कौनसा व्याख्यान है जिसे ठीक माना जाय?

समाधान -- एकेन्द्रिय जाति नामकर्मके उदयसे एकेन्द्रिय, व्दीन्द्रिय जाति नामकर्मके उदयसे व्दीन्द्रिय, त्रीन्द्रियजाति नामकर्मके उदयसे त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति नामकर्मके उदयसे चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियजाति नामकर्मके उदयसे पंचेन्द्रिय जीव होते हैं । इस व्याख्यानके अनुसार केवली और अपर्याप्त

जीवोंके भी पंचेन्द्रिय जाति नामकर्मका उदय होता ही है । अतः यह व्याख्यान निर्दोष है । अतएव इसका आश्रय करना चाहिये ।

शंका -- पंचेन्द्रियजाति किसे कहते हैं?

समाधान -- जिससे कबूतर आदि जाति-विशेष ' ये पंचेन्द्रिय हैं 'इस प्रकार समान प्रत्ययसे ग्रहण करने योग्य होते हैं और जिसमें पंचेन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमके सहकारीपनेकी अपेक्षा रहती है उसे पंचेन्द्रिय जाति कहते हैं ।

अब अतीन्द्रिय जीवोंके अस्तित्वके प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

उन एकेन्द्रियादि जीवोंसे परे अनिन्द्रिय जीव होते हैं ॥३८॥

तेनेति एकवचनं जातिनिबन्धनम् । परमूध्वम् । अनिन्द्रियाः एकेन्द्रियादि-जात्यतीताः, सकलकर्मकलङ्कातीतत्वात् ।

कायमार्गणाप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ----

कायाणुवादेण अत्थि पुढविकाइया आदकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फइकाइया तसकाइया अकाइया चेदि ॥३९॥

अनुवदनमनुवादः । कायानामनुवादः कायानुवादः, तेन कायानुवादेन । पृथिव्येव कायः पृथिवीकायः, स एषामस्तीति पृथिवीकायिकाः । न कार्मणशरीरमात्र-स्थितजीवानां पृथिवीकायत्वाभावः, भाविनी भूतवदुपचारतस्तेषामपि तद्व्यपदेशोप-पत्तेः । अथवा पृथिवीकायिकनामकर्मादयवशीकृताः पृथिवीकायिकाः । एवमप्कायिका-दीनामपि वाच्यम् । पृथिव्यादीनि कर्माण्यसिध्दानीति चेन्न, पृथिवीकायिकदिकार्या-न्यथानुपपत्तितस्तदस्तित्वसिध्देः । एते पञ्चापि स्थावराः, स्थावरनामकर्मादयजनित-

सूत्रमें 'तेण' यह एक वचन जातिका सूचक है । 'परं' शब्दका अर्थ ऊपर है । जिससे यह अर्थ हुआ कि एकेन्द्रियादि जातिभेदोंसे रहित अनिन्द्रिय जीव होते हैं, क्योंकि, उनके संपूर्ण द्रव्यकर्म और भावकर्म नहीं पाये जाते हैं ।

अब कार्यमार्गणाके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

कायानुवादकी अपेक्षा पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और कायरहित जीव हैं ॥३९॥

सूत्रके अनुकूल कथन करनेको अनुवाद कहते हैं । कार्योंके अनुवादको कायानुवाद कहते हैं, उसकी अपेक्षा पृथिवीकायिक आदि जीव हैं । पृथिवीही काय पृथिवीकाय है, वह जिनके पाया जाता है उन जीवोंको पृथिवीकायिक कहते हैं । पृथिवीकायिकका इस प्रकार लक्षण करनेपर कर्मण काययोगमें स्थित जीवोंके पृथिवीकायपना नहीं हो सकता है, यह बात नहीं है, क्योंकि, जिस प्रकार जो कार्य अभी नहीं हुआ है, उसमें यह हो चुका इस प्रकार उपचार किया जाता है, उसीप्रकार कर्मण काययोगमें स्थित पृथिवीकायिक जीवोंके भी पृथिवीकायिक यह संज्ञा बन जाती है । अथवा, जो जीव पृथिवीकायिक नामकर्मके उदयके वशवर्ती हैं उन्हें पृथिवीकायिक कहते हैं । इसी प्रकार जलकायिक आदि शब्दोंकी भी निरुक्ति कर लेना चाहिये ।

शंका -- पृथिवी आदि कर्म असिद्ध हैं, अर्थात् उनका सद्भाव किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, पृथिवीकायिक आदि कार्योंका होना अन्यथा बन नहीं सकता, इसलिये पृथिवी आदि नामकर्मोंके अस्तित्वकी सिद्धि हो जाती है ।

स्थावर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई विशेषताके कारण ये पांचों ही स्थावर कहलाते हैं ।

-----  
विशेषत्वात् । स्थानशीलाः स्थावरा इति चेन्न, वायुतेजोऽम्भसां देशान्तरप्राप्ति-  
दर्शनादस्थावरत्वप्रसङ्गात् १ (त. रा. वा. २. १२. ३, तेजोवायू व्दीन्द्रियादयश्च त्रसाः । स. त. सू. २. १४.) ।  
स्थानशीलाः स्थावरा इति व्युत्पत्तिमात्रमेव, नार्थः प्राधान्येनाश्रीयते गोशब्दस्येव ।  
त्रसनामकर्मोदयापादितवृत्तस्त्रसाः । त्रेसेरुद्धेजन-क्रियस्य त्रस्यन्तीति त्रसा इति चेन्न,  
गर्भाण्डजमूर्च्छितसुषुप्तेषु तदभावादत्रसत्व-प्रसङ्गात् २ (त. रा. वा. २. १२. २.) । ततो न चलनाचलनापेक्षं  
त्रसस्थावरत्वम् । आत्मप्रवृत्त्युपचितपुद्गलिपिण्डः कायः इत्यनेनेदं व्याख्यानं विरुद्धद्यत इति चेन्न,  
जीवविपाकित्रसपृथिवीकायिकादि-कर्मोदयसहकार्योदारिकशरीरोदयजनितशरीरस्यापि

उपचारतस्तद्व्यपदेशार्हत्वा-विरोधात् । त्रसस्थावरकायिकनामकर्मबन्धातीताः अकायिकाः सिद्धाः । उक्तं च -

शंका -- स्थानशील अर्थात् ठहरना ही जिनका स्वभाव हो उन्हें स्थावर कहते हैं, ऐसी व्याख्याके अनुसार स्थावरोंका स्वरूप क्यों नहीं कहा?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, वैसा लक्षण मानने पर, वायुकायिक, अग्निकायिक और जलकायिक जीवोंकी एक देशसे गति दूसरे देशमें गति देखी जानेसे उन्हें अस्थावरत्वका प्रसंग प्राप्त हो जायगा ।

स्थानशील स्थावर होते हैं, यह निरुक्ति व्युत्पत्तिमात्र ही है, इसमें गो शब्दकी व्युत्पत्तिकी तरह प्रधानतासे अर्थका ग्रहण नहीं है ।

त्रस नामकर्मके उदयसे जिन्होंने त्रसपर्यायको प्राप्त कर लिया है उन्हें त्रस कहते हैं ।

शंका -- ' त्रसि उद्वेगे ' इस धातुसे त्रस शब्दकी सिद्धि हुई है, जिसका यह अर्थ होता है कि जो उद्विग्न अर्थात् भयभीत होकर भागते हैं वे त्रस हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, गर्भमें स्थित, अण्डमें बन्द, मूर्छित और सोते हुए जीवोंमें उक्त लक्षण घटित नहीं होनेसे उन्हें अत्रसत्वका प्रसंग आजायगा । इसलिये चलने और ठहरनेकी अपेक्षा त्रस ओर स्थावरपना नहीं समझना चाहिये ।

शंका -- आत्म-प्रवृत्ति अर्थात् योगसे संचित हुए पुद्गलपिण्डको काय कहते हैं, इस व्याख्यानसे पूर्वोक्त व्याख्यान विरोधको प्राप्त होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जिसमें जीवविपाकी त्रस नामकर्म और पृथिवीकायिक आदि नामकर्मके उदयकी सहकारिता है ऐसे औदारिक-शरीर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए शरीरको उपचारसे कायपना बन जाता है, इसमें कोई विरोध नहीं आता है ।

त्रस और स्थावर-कायिक नामकर्मके बन्धसे अतीत सिद्धोंको अकायिक कहते हैं । कहा भी है --

जिस प्रकार अग्निको प्राप्त हुआ सोना, कीट और कालिमारुप बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकारके मलसे रहित हो जाता है, उसी प्रकार ध्यानके द्वारा यह जीव काय और कर्मरूप

जह कंचणमग्नि-गयं मुंचइ किट्टेण कालियाए य ।

तह काय १ (क प्रतौ कालिय.) -बंध-मुक्का अकाइया ज्ञाण-जोएण २ (प्रा. पं. १, २७। गो. जी. २०३. किट्टेन बहिर्मलेन कालिकया च वैवर्ण्यरू पांतरंगमलेन। जी. प्र. टी.) ॥१४४॥

पुढवि-काइयादीणं भेद-पदुप्पायणडुमुत्तर-सुत्तं भणइ ---

पुढविकाइया दुविहा--बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा--पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा- पज्जत्ता अपज्जत्ता। आउकाइया दुविहा-बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा-पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा-पज्जत्ता अपज्जत्ता। तेउकाइया दुविहा--बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा--पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा--पज्जत्ता अपज्जत्ता। वाउकाइया दुविहा-बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा--पज्जत्ता अपज्जत्ता। सुहुमा दुविहा--पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि ॥ ४० ॥

बादरनामकर्मोदयोपजनितविशेषाः बादराः, सूक्ष्मनामकर्मोदयोपजनितविशेषाः सूक्ष्माः। को विशेषश्चेत्? सप्रतिघाताप्रतिघातरूपः ३( मु. रूपाः १)। पर्याप्तनामकर्मोदयजनित-

बन्धसे मुक्त होकर कायरहित हो जाता है ॥ १४४ ॥

अब पृथिवीकायिकादि जीवोंके भेदोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं--

पृथिवीकायिक जीव दो प्रकारके हैं-बादर और सूक्ष्म। बादर पृथिवीकायिक जीव दो प्रकारके हैं - पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीव दो प्रकारके हैं- पर्याप्त और अपर्याप्त। जलकायिक जीव दो प्रकारके हैं- बादर और सूक्ष्म। बादर जलकायिक जीव दो प्रकारके हैं- पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म जलकायिक जीव दो प्रकारके हैं- पर्याप्त और अपर्याप्त। अग्निकायिक जीव दो प्रकारके हैं- बादर और सूक्ष्म। बादर अग्निकायिक जीव दो प्रकारके हैं- पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म अग्निकायिक जीव दो प्रकारके हैं- पर्याप्त और अपर्याप्त। वायुकायिक जीव दो प्रकारके हैं- बादर और सूक्ष्म। बादर वायुकायिक जीव दो प्रकारके हैं- पर्याप्त और अपर्याप्त। सूक्ष्म वायुकायिक जीव दो प्रकारके हैं- पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ ४० ॥ जिनमें बादर नामकर्मके उदयसे विशेषता उत्पन्न हो गई है उन्हें बादर कहते हैं। तथा जिनमें सूक्ष्म नामकर्मके उदयसे विशेषता उत्पन्न हो गई है उन्हें सूक्ष्म कहते हैं।

शंका -- बादर और सूक्ष्ममें क्या विशेषता है?

समाधान -- बादर प्रतिघात सहित होते हैं- और सूक्ष्म प्रतिघात रहित होते हैं, यही इन दोनोंमें विशेषता है। अर्थात् निमित्तके मिलनेपर बादर शरीरका प्रतिघात हो सकता

शक्त्याविर्भावितवृत्तयः पर्याप्ताः । अपर्याप्तनामकर्मोदयजनितशक्त्याविर्भावितवृत्तयः अपर्याप्ताः ।

वनस्पतिकायिकभेदप्रतिपादनार्थमाह--

वणप्फइकाइया दुविहा-पत्तेयसरीरा साधारणसरीरा । पत्तेय-सरीरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता ।  
साधारणसरीरा दुविहा-बादरा सुहुमा । बादरा दुविहा-पज्जत्ता अपज्जत्ता । सुहुमा दुविहा पज्जत्ता  
अपज्जत्ता चेदि ॥४९॥

प्रत्येकं पृथक् शरीरं येषां ते प्रत्येकशरीराः खदिरादयो वनस्पतयः पृथिवीकायिकादिपञ्चानामपि  
प्रत्येकशरीरव्यपदेशस्तथा सति स्यादिति चेन्न, इष्टत्वात् ।

है, परंतु सूक्ष्मशरीरका कभी भी प्रतिघात नहीं होता है ।

पर्याप्त नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई शक्तिसे जिन जीवोंकी अपने अपने योग्य पर्याप्तियोंके पूर्ण  
करनेरूप अवस्था-विशेष प्रगट हो गई है उन्हें पर्याप्त कहते हैं । तथा अपर्याप्त नामकर्मके उदयसे उत्पन्न  
हुई शक्तिसे जिन जीवोंकी शरीर-पर्याप्ति पूर्ण न करके मरनेरूप अवस्था-विशेष उत्पन्न हो जाती है  
उन्हें अपर्याप्त कहते हैं ।

अब वनस्पति-कायिक जीवोंके भेद-प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं --

वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकारके हैं- प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर । प्रत्येकशरीर  
वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकारके हैं- पर्याप्त और अपर्याप्त । साधारणशरीर वनस्पतिकायिक जीव दो  
प्रकारके हैं- बादर और सूक्ष्म । बादर दो प्रकारके हैं- पर्याप्त और अपर्याप्त । सूक्ष्म दो प्रकारके हैं- पर्याप्त  
और अपर्याप्त ॥४९॥

जिनका प्रत्येक अर्थात् पृथक् पृथक् शरीर होता है उन्हें प्रत्येकशरीर जीव कहते हैं, जैसे, खैर  
आदि वनस्पति ।

शंका-- प्रत्येक शरीरका इस प्रकार लक्षण करने पर पृथिवीकायिक आदि पांचोंको भी  
प्रत्येकशरीर संज्ञा प्राप्त हो जायगी?

समाधान -- यह आशंका कोई आपत्ति-जनक नहीं है, क्योंकि, पृथिवीकायिक आदिको  
प्रत्येकशरीर मानना इष्ट ही है ।

शंका -- तो फिर पृथिवीकायिक आदिके साथभी प्रत्येकशरीर विशेषण लगा लेना चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जिस प्रकार वनस्पतियोंमें प्रत्येक वनस्पतिसे निराकरण करने योग्य साधारण वनस्पति पाई जाती है, उस प्रकार पृथिवी आदिमें प्रत्येक शरीरसे भिन्न निराकरण करने योग्य कोई भेद नहीं पाया जाता है, इसलिये पृथिवी आदिमें अलग विशेषण देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

-----

तर्हि तेषामपि प्रत्येकशरीरविशेषणं विधातव्यमिति चेन्न, तत्र वनस्पतिष्विव व्यवच्छेद्याभावात्। बादरसूक्ष्मोभयविशेषणाभावादानुभयत्वमनुभयस्य चाभावात्प्रत्येकशरीर-वनस्पतीनामभावः समापतेदिति चेन्न, बादरत्वेन सतामभावानुपपत्तेः। अनुक्तं कथमवगम्यत इति चेन्न, सत्त्वान्यथानुपपत्तितस्तत्सिद्धेः। सौक्ष्म्यविशिष्टस्यापि जीवसत्त्वस्य सम्भवः१ (म. स्यासंभव) समस्तीति अनैकान्तिको हेतुरिति चेन्न, बादरा इति लक्षण-मुत्सर्गरूपत्वादशेषप्राणिव्यापि। ततः प्रत्येकशरीरवनस्पतयो बादरा एव, न सूक्ष्माः, साधारणशरीरेष्विव उत्सर्गविधिबाधकापवादविधेरभावात्। तदुत्सर्गत्वं कथमवगम्यत इति चेन्न प्रत्येकवनस्पतित्रसेषूभयविशेषणानुपादनान्न सूक्ष्मत्वमुत्सर्गः आर्षमन्तरेण प्रत्यक्षादिनानवगतेरप्रसिद्धस्य बादरत्वस्येवोत्सर्गत्वविरोधात्।

-----

शंका -- प्रत्येक वनस्पतिमें बादर और सूक्ष्म दो विशेषण नहीं पाये जाते हैं, इसलिये प्रत्येक वनस्पतिको अनुभयपना प्राप्त हो जाता है। परंतु बादर और सूक्ष्म इन दो भेदोंको छोड़कर अनुभयरूप कोई तीसरा विकल्प पाया नहीं जाता है, इसलिये अनुभयरूप विकल्पके अभावमें प्रत्येकशरीर वनस्पतियोंका भी अभाव प्राप्त हो जायगा?

समाधान -- ऐसा नहीं है, क्योंकि, प्रत्येक वनस्पतिका बादररूपसे अस्तित्व पाया जाता है, इसलिये उसका अभाव नहीं हो सकता है।

शंका -- प्रत्येक वनस्पतिको बादर नहीं कहा गया है, फिर कैसे जाना जाय कि प्रत्येक वनस्पति बादर ही होती है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, प्रत्येक वनस्पतिका दूसरे रूपसे अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सकता है, इसलिये बादररूपसे उसके अस्तित्वकी सिद्धि हो जाती है।

शंका -- सूक्ष्मता-विशिष्ट जीवोंकी सत्ता संभव है, इसलिये यह सत्त्वान्यथानुपपत्तिरूप हेतु अनैकान्तिक है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, बादर यह लक्षण उत्सर्गरूप (व्यापक) होनेसे संपूर्ण प्राणियोंमें पाया जाता है। इसलिये प्रत्येक शरीर वनस्पति जीव बादर ही होते हैं, सूक्ष्म नहीं, क्योंकि, जिस प्रकार साधारण शरीरोंमें उत्सर्गविधिकी बाधक अपवादविधि पाई जाती है, अर्थात् साधारण शरीरोंमें बादर भेदके अतिरिक्त सूक्ष्म भेद भी पाया जाता है, उस प्रकार प्रत्येक वनस्पतिमें अपवादविधि नहीं पाई जाती है, अर्थात् उनमें सूक्ष्म भेदका सर्वथा अभाव है।

शंका -- प्रत्येक वनस्पतिमें बादर यह लक्षण उत्सर्गरूप है, यह कैसे जाना जाता है।

समाधान -- नहीं, क्योंकि, प्रत्येक वनस्पति और त्रसोंमें बादर और सूक्ष्म ये दोनों विशेषण नहीं पाये जाते हैं, इसलिये, सूक्ष्मत्व उत्सर्गरूप नहीं हो सकता है, क्योंकि, आगमके विना प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सूक्ष्मत्वका ज्ञान नहीं होता है, अतएव प्रत्यक्षादिसे अप्रसिद्ध सूक्ष्मको बादरकी तरह उत्सर्गरूप माननेमें विरोध आता है।

साधारणं सामान्यं शरीरं येषां ते साधारणशरीराः । प्रतिनियतजीवप्रतिबद्धैः  
पुद्गलविपाकित्वादाहारवर्गणास्कन्धानां कायाकारपरिणमनहेतुभिरौदारिकनोकर्मस्कन्धैः कथं  
भिन्नजीवफलदातृभिरेकं शरीरं निष्पाद्यते, विरोधादिति चेन्न पुद्गला-  
नामेकदेशावस्थितानामेकदेशावस्थितमित्यः समवेतजीवसमवेतानां तत्स्थाशेषप्राणि  
सम्बन्धेकशरीरनिष्पादनं न विरुद्धम् साधारणकारणतः समुत्पन्नकार्यस्य साधारणत्वाविरोधात् ।  
कारणानुरूपं कार्यमिति न निषेद्धं पार्यते, सकलनैयायिकलोकप्रसिद्धत्वात् । उक्तं च -

साहारणमाहारो साहारणमाणपाण-गहणं च ।

साहारण-जीवाणं साहारण लक्खणं भणिय१ (प्रा. पं. १ ९२। गो. जी. १९२ च शब्देन शरीरेन्द्रियपर्याप्तिद्वयं समुच्चयीकृतम् । जी. प्र. टी. । आचा. नि. १३६.) ॥ १४५ ॥

जत्थेक्कु मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं ।

वक्कमदि जत्थ एक्को वक्कमणं तत्थ णंताणं २ (प्रा. पं. १ २३। गो. जी. १९३. एकनिगोदशरीरे  
प्रतिसमयमनन्तानन्तजीवास्तावत् सहैव म्रियन्ते सहैवोत्पद्यन्ते यावदसंख्यात सागरोपमकोटिमात्री  
असंख्यातलोकमात्रसमयप्रमिता उत्कृष्टनिगोदकायस्थितिः) ॥ १४६ ॥

विशेषार्थ -- बादरत्व पांचों स्थावर और त्रसोंमें पाया जाता है, परंतु सूक्ष्मत्व प्रत्येकवनस्पति और  
त्रसोंमें नहीं पाया जाता है। इसलिये बादर उत्सर्ग विधि है, सूक्ष्मत्व नहीं।

जिन जीवोंका साधारण अर्थात् भिन्न भिन्न शरीर न होकर समानरूपसे एक शरीर पाया जाता है  
उन्हें साधारणशरीर जीव कहते हैं।

शंका -- जीवोंसे अलग अलग बंधे हुए पुद्गलविपाकी होनेसे आहार वर्गणाके स्कन्धोंको शरीरके  
आकाररूपसे परिणमन करानेमें कारणरूप और भिन्न-भिन्न जीवोंको भिन्न-भिन्न फल देनेवाले  
औदारिक नोकर्मस्कन्धोंके द्वारा अनेक जीवोंके एक शरीर कैसे उत्पन्न किया जा सकता है, क्योंकि, ऐसा  
माननेमें विरोध आता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जो एकदेशमें अवस्थित हैं और जो एकदेशमें अवस्थित तथा परस्पर  
संबद्ध जीवोंके साथ समवेत हैं, ऐसे पुद्गल वहां पर स्थित संपूर्ण जीवसंबन्धी एक शरीरको उत्पन्न  
करते हैं इसमें कोई विरोध नहीं आता है, क्योंकि, साधारण कारणसे उत्पन्न हुआ कार्य भी साधारण ही  
होता है। कारणके अनुरूप ही कार्य होता है, इसका निषेधभी तो नहीं किया जा सकता है, क्योंकि, यह  
बात संपूर्ण नैयायिक लोगोंमें प्रसिद्ध है। कहा भी है --

साधारण जीवोंका साधारण ही आहार होता है और साधारण ही श्वासोच्छ्वासका ग्रहण होता  
है। इस प्रकार परमागममें साधारण जीवोंका साधारण लक्षण कहा है ॥ १४५ ॥

साधारण जीवोंमें जहाँ पर एक जीव मरण करता है वहां पर अनन्त जीवोंका मरण होता है।  
और जहां पर एक जीव उत्पन्न होता है वहां पर अनन्त जीवोंका उत्पाद होता है ॥ १४६ ॥

एय-णिगोद-सरीरे जीवा दव्व-प्पमाणदो दिट्ठा।

सिद्धेहि अणंत-गुणा सब्बेण वितीद-कालेण१ (प्रा.पं. १,८४। गो. जी. १९६. ननु  
अष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यन्तरे अष्टोत्तरषट्शतजीवेषु कर्मक्षयं कृत्वा सिद्धेषु सत्सु सिद्धराशेर्वृद्धिदर्शनात्

संसारिजीवराशेश्च हानिदर्शनात् कथं सर्वदा सिद्धेभ्योऽनन्त गुणत्वं एकशरीरनिगोदजीवानाम् सर्वजीवराश्यनन्तगुणकालसमयसमूहस्य तद्योग्यानन्तभागे गते सति संसारिजीवराशिक्षयस्य सिद्धराशिबहुत्वस्य च सुघटत्वात्? इति चेत्तन्न, केवलज्ञानदृष्ट्या केवलिभिः, श्रुतज्ञानदृष्ट्या श्रुतकेवलिभिश्च सदा दृष्टस्य भव्यसंसारिजीवराश्यक्षयस्यातिसूक्ष्मत्वात्तर्कविषयत्वाभावात् । प्रत्यक्षागमबाधितस्य च तर्कस्याप्रमाणत्वात् । जी. प्र टी.) ॥ १४७ ॥

अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो ।

भाव-कलंकइपउरा णिगोद-वासं ण मुंचंति २( प्रा. पं. १,८५। गो. जी. १९७. नित्यनिगोदलक्षणमनेन ज्ञातव्यं । X X X एकदेशाभावविशिष्ट-सकलार्थवाचिना प्रचुरशब्देन कदाचिदष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यन्तरे चतुर्गतिजीवराशितो निर्गतेषु अष्टोत्तर-) ॥ १४८॥

ते तादृक्षाः सन्तीति कथमवगम्यत इति चेन्न, आगमस्यातर्कगोचरत्वात् । न हि प्रमाणप्रकाशितार्थावगतिः प्रमाणान्तरप्रकाशमपेक्षते, स्वरूपविलोपप्रसङ्गात् । न चैतत्प्रामाण्यमसिद्धम् सुनिश्चितासम्भवद्बाधकप्रमाणस्यासिद्धत्वविरोधात् । बादर-निगोदप्रतिष्ठिताश्चार्षान्तरेषु श्रूयन्ते, क्व तेषामन्तर्भावश्चेत्? प्रत्येकशरीरवनस्पतिष्विति ब्रूमः । केते? स्नुगार्द्रकमूलकादयः ।

-----

द्रव्य-प्रमाणकी अपेक्षा सिद्धराशि और संपूर्ण अतीत कालसे अनन्तगुणे जीव एक निगोद-शरीरमें देखे गये हैं ॥ १४७ ॥

नित्य निगोदमें ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं जिन्होंने अभीतक त्रस जीवोंकी पर्याय नहीं पाई है, और जो भाव अर्थात् निगोद पर्यायके योग्य कषायके उदयसे उत्पन्न हुई दुर्लेश्यारूप परिणामोंसे अत्यन्त अभिभूत रहते हैं, इसलिये निगोद-वासको कभी नहीं छोड़ते ॥ १४८ ॥

शंका -- साधारण जीव उक्त लक्षणवाले होते हैं यह कैसे जाना जाता है?

समाधान -- ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि, आगम तर्कका विषय नहीं है । एक प्रमाणसे प्रकाशित अर्थज्ञान दूसरे प्रमाणके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं करता है, अन्यथा प्रमाणके स्वरूपका अभाव प्राप्त हो जायगा । तथा आगमकी प्रमाणता असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, जिसके बाधक प्रमाणोंकी असंभावना अच्छी तरह निश्चित है उसको असिद्ध माननेमें विरोध आता है । अर्थात् बाधक प्रमाणोंके अभावमें आगमकी प्रमाणताका निश्चय होता ही है ।

शंका -- बादर निगोदोंसें प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति दूसरे आगमोंमें सुनी जाती है, उसका अन्तर्भाव वनस्पतिके किस भेदमें होगा?

समाधान -- प्रत्येक शरीर वनस्पतिमें उसका अन्तर्भाव होगा, ऐसा हम कहते हैं।

शंका -- जो बादरनिगोदसे प्रतिष्ठित हैं वे कौन हैं?

समाधान -- थूहर, अदरख और मूली आदिक वनस्पति बादर निगोदसे प्रतिष्ठित हैं।

परिसमाप्यते । अत्र विशेषश्च टीकातोऽवसेयः । जी. प्र. टी. ।

त्रसकायानां भेदप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह-

तसकाइया दुविहा--पज्जत्ता अपज्जत्ता ॥ ४२ ॥

गतार्थत्वान्नास्यार्थ उच्यते । किं त्रसाः सूक्ष्मा उत बादरा इति? बादरा एव न सूक्ष्माः । कुतः? तत्सौक्ष्म्यविधायकार्षाभावात् । बादरत्वविधायकार्षाभावे कथं तदवगम्यत इति चेन्न, उत्तरसूत्रतस्तेषां बादरत्वसिद्धेः; केते पृथिवीकायादय इति चेदुच्यते--

पुढवी य सक्करा वाळुअ उवले सिलादि छत्तीसा १ । (पुढवी य बालुगा सक्करा य उवले सिला य लोणे य । अय तंब तउ य सीसय रू प्प सुवण्णे य वइरे य ॥ हरिदाले हिंगुलए मणोसिला सस्सगंजण पवाले य । अब्भपडलब्भवालु य बादरकाया मणिविधीया ॥ गोमज्झगे य रुजगे अंके फलहे य लोहिदंके य । चंदप्पभ वेरुलिए जलकंते सूरकंते य ॥ गेरुय चंदण बव्वग वगमोए तह मसारगल्लो य । ते जाण पुढविजीवा जाणित्ता परिहरेदव्वा ॥ मूलाचा. २०६-२०९ । आचा. नि. ७३ -७६. । उत्त. ३६- ७४-७७ । प्रज्ञा. १. १७.) ।

पुढवीमया हु जीवा णिदिट्ठा जिणवरिदेहि २ (प्रा. पं. १. ७७ ।) ॥ १४९ ॥

अब त्रसकायिक जीवोंके भेदोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं--

त्रसकायिक जीव दो प्रकारके होते हैं, पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ ४२ ॥

गतार्थ होनेसे इस सूत्रका अर्थ नहीं कहते हैं ।

शंका -- त्रस जीव क्या सूक्ष्म होते हैं अथवा बादर?

समाधान -- त्रस जीव बादर ही होते हैं, सूक्ष्म नहीं होते।

शंका -- यह कैसे जाना जाय?

समाधान -- क्योंकि, त्रस जीव सूक्ष्म होते हैं, इस प्रकार कथन करनेवाला आगम प्रमाण नहीं पाया जाता है।

शंका -- त्रस जीवोंके बादरपनेका प्रतिपादन करनेवाले आगम प्रमाण का अभाव होनेपर यह कैसे जाना जाता है कि वे बादर ही होते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, आगे आनेवाले सूत्रसे त्रस जीवोंका बादरपना सिद्ध हो जाता है।

शंका -- वे पृथिवीकाय आदि जीव कौनसे हैं?

समाधान -- जिनेन्द्र भगवान्ने पृथिवी, शर्करा बालुका उपल और शिला आदिके भेदसे पृथिवीरूप प छत्तीस प्रकारके जीव कहे हैं ॥ १४९ ॥

विशेषार्थ -- यहां पर जो पृथिवीके अवान्तर भेदोंकी अपेक्षा पृथिवीकायिक जीव छत्तीस प्रकारके कहे हैं, वे इस प्रकार हैं; मट्टीरूप पृथिवी, गंगा आदि नदियोंमें उत्पन्न होनेवाली रूक्ष बालुका, तीक्ष्ण और चौकोर आदि आकारवाली शर्करा, गोल पत्थर, बड़ा पत्थर, समुद्रादिमें उत्पन्न होनेवाला नमक, लोहा, तांबा, जस्ता, सीसा, चांदी, सोना, वज्र (हीरा), हरिताल, इंगुल, मैन्सिल, हरे रंगवाला सस्यक, अंजन, मूंगा, भोडल, चिकनी और चमकती हुई रेती,

-----  
षट्शतजीवेषु मुक्तिं गतेषु तावंतो जीवा नित्गनिगोदभावं त्यक्त्वा चतुर्गतिभवं प्राप्नुवंतीत्ययमर्थः  
प्रतिपादितो बोद्धव्यम्। जी. प्र. टी.

-----  
ओसा हिमो य धूमरि हरदणु सुद्धोदवो घणोदो य १ (प्रा. पं. १, ७८। ओसा य हिमग महिगा  
हरदणु सुद्धोदगे घणुदगे य। ते जाण आउजीवा जाणित्ता परिहरेदव्वा<sup>१</sup> मूलाचा. २१०। आचा. नि. १०८।  
उत्त. ३६. ८६। प्रज्ञा. १. २०.)।

एदे दु आउकाया जीवा जिण-सासणुद्धिद्धा ॥ १५० ॥

इंगाल-जाल-अच्ची मुम्मुर-सुद्धागणी तथा अगणी २ (प्रा. पं. १. ७९.। मूलाचा. २११। आचा. नि.  
११८। उत्त. ३६. ११०-१११। प्रज्ञा. १.२३.)।

अण्णे वि एवमाई तेउक्काया समुद्धिद्धा ॥ १५१ ॥

वाउब्भामो उक्कलि-मंडलि-गुंजा महा घणो य तणू ।

एदे दु वाउकाया जीवा जिण-इंद- णिद्धिद्धा ३ (प्रा. पं. १, ८०। मूलाचा. २१२. उक्कलिया मंडलिया गुंजा घणवाय सुद्धवाया य। बादर वाउविहाणा पंचविहा वण्णिया एए ॥ आचा. नि. १६६.। उक्त. ३६. ११९-१२०.। प्रज्ञा. १. २६.) ॥ १५२ ॥

मूलग-पोर-बीया कंदा तह खंध-बीय-बीयरुहा ।

सम्मच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य ४ (प्रा. पं. १. ८१। गो. जी. १८६। मूलाचा. २१३. मूल मूलबीजा जीवा येषां मूलं प्रादुर्भवति ते च हरिद्रादयः । अग्न-अग्रबीजा जीवाः कोरंटकमल्लिका कुब्जकादयो येषामग्रं प्रारोहति । पोरवीया पौरबीज-) ॥ १५३ ॥

कर्केतनमणि, राजवर्तकरु प मणि, पुलकवर्णमणि, स्फटिकमणि, पद्मरागमणि, चद्रकान्तमणि , वैडर्यमणी, जलकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि, गेरुवर्ण रुधिराक्षमणि, चन्दनगन्धमणि, अनेक प्रकारका मरकतमणि, पुखराज, नीलमणि और विद्रुमवर्णवाली मणि ये सब पृथिवीके भेद हैं, इसलिये इनके भेदसे पृथिवीकायिक जीव भी छत्तीस प्रकारके हो जाते हैं ॥ १४९ ॥

ओस, वर्ष, कुहरा, स्थूल बिन्दुरूप जल, सूक्ष्म बिन्दुरूप जल, चद्रकान्तमणिसे उत्पन्न हुआ शुद्ध जल, झरना आदिसे उत्पन्न हुआ जल, समुद्र, तालाब और घनवात आदिसे उत्पन्न हुआ घनोदक अथवा हरदणु अर्थात् तालाब और समुद्र आदिसे उत्पन्न हुआ जल तथा घनोदक अर्थात् मेघ आदिसे उत्पन्न हुआ जल ये सब जिन शासनमें जलकायिक जीव कहे गये हैं ॥ १५० ॥

अंगार, ज्वाला, अर्चि अर्थात् अग्निकिरण, मुर्मुंर अर्थात् भूसा अथवा कण्डाकी अग्नि, शुद्धाग्नि अर्थात् बिजली और सूर्यकान्त आदिसे उत्पन्न हुई अग्नि और धूमादिसहित सामान्य अग्नि, ये सब अग्निकायिक जीव कहे गये हैं ॥ १५१ ॥

सामान्य वायु, उद्भ्राम अर्थात् घूमता हुआ ऊपर जानेवाला वायु (चक्रवात), उत्कलि अर्थात् नीचेकी ओर बहनेवाला या जलकी तरंगोंके साथ तरंगित होनेवाला वायु, मण्डलि अर्थात् पृथिवीसे स्पर्श करके घूमता हुआ वायु, गुंजा अर्थात् गुंजायमान वायु, महावात अर्थात् वृक्षादिकके भंगसे उत्पन्न होनेवाला वायु, घनवात और तनुवात ये सब वायुकायिक जीव जिनेन्द्र भगवानने कहे हैं ॥ १५२ ॥

मूलबीज, अग्रबीज, पर्वबीज, कन्दबीज, स्कन्धबीज, बीजरुह और संमूर्छिम, ये सब

विहि तीहि चउहि पंचहि सहिया जे इंदिएहि लोयम्मि ।

ते तसकाया जीवा णेया बीरोवएसेण १ ( प्रा. पं. १, ८६। गो. जी. १९८.) ॥ १५४ ॥

पृथिवीकायादीनां २ (मु. पृथिवीकायिकादीनां ।) स्वरूपमभिधाय साम्प्रतं तेषु  
गुणस्थाननिरूपणार्थमुत्तर- सूत्रमाह---

पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फइकाइया एक्कम्मि चेय मिच्छाइड्ढि-ड्ढाणे ३  
(कायानुबादेन पृथिवीकायादिषु वनस्पतिकायान्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । स . सि. १.८.) ॥ ४३ ॥

आह, आप्तागमविषयश्रद्धारहिता मिथ्यादृष्टयो भण्यन्ते । श्रद्धाभावश्चाश्रद्धेय-वस्तुपरिज्ञानपूर्वकः ।  
तथा च पृथिवीकायादीनामाप्तागमविषयपरिज्ञानोज्झितानां कथं

वनस्पतियाँ सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येकके भेदसे दोनों प्रकारकी कही गई हैं ॥ १५३ ॥

लोकमें जो जीव दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पांच इन्द्रियोंसे युक्त हैं उन्हें वीर  
भगवानके उपदेशसे त्रसकायिक जीव जानना चाहिये ॥ १५४ ॥

पृथिवीकायिक आदि जीवोंके स्वरूपका कथन करके अब उनमें गुणस्थानोंका निरूपण करनेके  
लिये आगेका सूत्र कहते हैं--

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीव मिथ्यादृष्टि  
नामक प्रथम गुणस्थानमें ही होते हैं ॥ ४३ ॥

शंका -- शंकाकार कहता है कि आप्त, आगम और पदार्थोंकी श्रद्धासे रहित जीव मिथ्यादृष्टि कहे  
जाते हैं, और श्रद्धान करने योग्य वस्तुमें विपरीत ज्ञानपूर्वक ही अश्रद्धा अर्थात् मिथ्याभिनिवेश हो सकता  
है। ऐसी अवस्थामें आप्त, आगम और पदार्थके परिज्ञानसे रहित पृथिवीकायिक आदि जीवोंके  
मिथ्यादृष्टिपना कैसे संभव है?

जीवा इक्षुवेत्रादयो येषां पोरप्रदेशः प्रारोहति । कंदा कन्दजीवाः कदलीपिण्डालुकादयो येषां कन्ददेशः  
प्रादुर्भवति । तह तथा । खंधवीया स्कन्धबीजजीवाः शल्लकीपालिभद्रकादयो येषां स्कन्धदेशो रोहति ।

बीयबीया बीजबीजा जीवा यवगोधूमादयो येषां क्षेत्रोदकादिसामग्याः प्ररोहः । सम्मुच्छिमा य सम्मुच्छिमाश्च मूलाद्यभावेऽपि येषां जन्म । X X पत्तेया प्रत्येकजीवाः पूगफलनालिकेरादयः । अणंतकाया य अनन्तकायाश्च स्नुहीगुड्यादयः, ये छिन्ना, भिन्नाश्च प्ररोहन्ति । X X स. टी. अग्गबीया मूलबीया खंधबीया चवं पोरबीया य<sup>१</sup> बीयरुहा समुच्छिम समासओवणसई जीवा ॥ आचा . नि. १३०. । उक्त. ३६. ९३.-१०० । प्रज्ञा. १. २९. ४४.

मिथ्यादृष्टित्वमिति ! नैष दोषः, परिज्ञाननिरपेक्षमूलमिथ्यात्वसत्त्वस्य १(मु. मूढ.) तत्राविरोधात् । अथवा ऐकान्तिकसांशयिकमूढव्युद्ग्राहितवैनयिकस्वाभाविकविपरीतमिथ्यात्वानां सप्तानामपि तत्र सम्भवः समस्ति । अत्रतनजीवानां सप्तविधमिथ्यात्वकलङ्काङ्कित-हृदयानामविनष्टमिथ्यात्वपर्यायेण सह स्थावरत्वमुपगतानां तत्सत्त्वाविरोधात् । इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रिया विकलेन्द्रियाश्च सर्वे मिथ्यादृष्टय इत्यभाणि, ततस्तेनैव गतार्थत्वान्नारम्भणीयमिदं सूत्रमिति? नैष दोषः, पृथिवीकायिकादीनामियन्तीन्द्रियाणि भवन्ति न भवन्तीति अनवगतस्य विस्मृतस्य वा शिष्यस्य प्रश्नवशादस्य सूत्रस्यावतारात् ।

त्रसजीवप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह--

तसकाइया बीइंदिय प्पहुडि जाव अजोगिकेव्वलि त्तिर (२. त्रसकायेषु चतुर्दशापि सन्ति<sup>१</sup> स. सि. १. ८.)

१४४ एते त्रसनामकर्मादयवशवर्तिनः । केपुनः स्थावराः इति चेत्? एकेन्द्रियाः

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, पृथिवीकायिक आदि जीवोंमें परिज्ञानकी अपेक्षारहित मूल मिथ्यात्वका सद्भाव होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । अथवा, ऐकान्तिक, सांशयिक, मूढ, व्युद्ग्राहित, वैनयिक, स्वाभाविक और विपरीत इन सातों प्रकारके मिथ्यात्वोंका भी उन पृथिवीकायिक आदि जीवोंमें सद्भाव संभव है, क्योंकि, जिनका हृदय सात प्रकारके मिथ्यात्वरूपी कलंकसे अंकित है ऐसे मनुष्यादि गतिसंबन्धी जीव पहले ग्रहण की हुई मिथ्यात्वपर्यायको न छोड़कर जब स्थावर पर्यायको प्राप्त हो जाते हैं, तो उनके सातों ही प्रकारका मिथ्यात्व पाया जाता है, इस कथन में कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका -- इन्द्रियानुवादसे एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय ये सब जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं, ऐसा कह आये हैं, इसलिये उसीसे यह ज्ञान हो जाता है कि पृथिवीकायिक आदि जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं। अतः इस सूत्रको पृथक् रूपसे बनानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, पृथिवीकायिक आदि जीवोंके इतनी इन्द्रियाँ होती हैं, अथवा इतनी इन्द्रियाँ नहीं होती हैं, इस प्रकार जिस शिष्यको ज्ञान नहीं है, अथवा जो भूल गया है, उस शिष्यके प्रश्नके अनुरोधसे इस सूत्रका अवतार हुआ है।

अब त्रस जीवोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं--

द्वीन्द्रियसे आदि लेकर अयोगिकेव्रलीतक त्रसकायिक जीव होते हैं ॥४४॥

इन सब जीवोंके त्रस नामकर्मका उदय पाया जाता है, इसलिये इन्हें त्रसकायिक कहते हैं।

शंका -- स्थावर जीव कौन कहलाते हैं?

समाधान -- एकेन्द्रिय जीव स्थावर कहलाते हैं।

-----  
कथमनुक्तमवगम्यते चेतपरिशेषात्। स्थावरकर्मणः किं कार्यमिति चेदेकस्थानावस्थापकत्वम्। तेजोवाय्वष्कायिकानां चलनात्मकानां तथा सत्यस्थावरत्वं स्यादिति चेन्न, स्थास्नूनां प्रयोगतश्चलच्छिन्नपर्णानामिव गतिपर्यायपरिणतसमीरणव्यतिरिक्त-शरीरत्वतस्तेषां गमनाविरोधात्।

बादरजीवप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह-

बादरकाइया बादरेइंदिय प्पहुडि जाव अजोगिकेव्रलि त्ति ॥४५॥

बादरः स्थूलः सप्रतिघातः कायो येषां ते बादरकायाः। पृथिवीकायिकादिषु वनस्पतिपर्यन्तेषु पूर्वमेव बादराणां सूक्ष्माणां च सत्त्वमुक्तं ततोऽत्र बादरैकेन्द्रियग्रहणमनर्थकमिति चेन्नानर्थकम्, प्रत्येकशरीरवनस्पत्युपादानार्थम् तदुपादानात्प्रत्येकशरीर-

-----  
शंका -- सूत्रमें एकेन्द्रिय जीवोंको स्थावर तो कहा नहीं है, फिर कैसे जाना जाय कि एकेन्द्रिय जीवोंको स्थावर कहते हैं?

समाधान -- सूत्रमें जब द्वीन्द्रियादिक जीवोंको त्रसकायिक कहा है, तो परिशेषन्यायसे यह जाना जाता है कि एकेन्द्रिय जीव स्थावर कहलाते हैं।

शंका -- स्थावरकर्मका क्या कार्य है?

समाधान -- एक स्थान पर अवस्थित रखना स्थावरकर्मका कार्य है।

शंका -- ऐसा मानने पर, गमन स्वभाववाले अग्निकायिक, वायुकायिक और जलकायिक जीवोंका अस्थावरपना प्राप्त हो जायगा?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जिस प्रकार वृक्षमें लगे हुए पत्ते वायुके प्रयोगसे हिला करते हैं और टूटने पर इधर उधर उड़ जाते हैं, उसी प्रकार अग्निकायिक और जलकायिकके गमन होनेमें कोई विरोध नहीं आता है। तथा वायुके गतिपर्यायसे परिणत शरीरको छोड़कर कोई दूसरा शरीर नहीं पाया जाता है<sup>६</sup> इसलिये उसके गमन करनेमें भी कोई विरोध नहीं आता है।

अब बादर जीवोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहतें हैं---

बादर एकेन्द्रिय जीवोंसे लेकर अयोगिकेव्रलीपर्यन्त जीव बादरकायिक होते हैं ॥४५॥

जिन जीवोंका शरीर बादर, स्थूल अर्थात् प्रतिघातसहित होता है उन्हें बादरकाय कहते हैं।

शंका -- पृथिवीकायिकसे लेकर वनस्पति पर्यन्त जीवोंमें बादर और सूक्ष्म दोनों प्रकारके जीवोंका सद्भाव पहले ही कह आये हैं, इसलिये इस सूत्रमें बादर एकेन्द्रिय पदका ग्रहण करना निष्फल है?

समाधान -- अनर्थक नहीं है, क्योंकि, प्रत्येकशरीर वनस्पतिके ग्रहण करनेके लिये

वनस्पतिप्रभृतयो बादरा इति यावत्। न विधातव्यमेतेषां बादरत्वं प्रत्यक्षसिद्धत्वादिति चेन्न,  
सौक्ष्म्याभावप्रतिपादनफलत्वात्।

द्विविधकायातीतजीवास्तित्वप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह --

तेण परमकाइया चेदि ॥४६॥

तेन द्विविधकायात्मकजीवराशेः परं बादरसूक्ष्मशरीरनिबन्धनकर्मातीतत्वतोऽशरीराः सिद्धाः  
अकायिकाः। जीप्रदेशप्रचयात्वकत्वात्सिद्धा अपि सकाया इति चेन्न,  
तेषामनादिबन्धनबद्धजीवप्रदेशात्मकत्वात्। अनादिप्रचयोऽपि कायः किन्न स्यादिति चेन्न, मूर्तानां  
पुद्गलानां कर्मनों कर्मपर्यायपरिणतानां सादिसान्तप्रचयस्य

बादर एकेन्द्रिय पद सूत्रमें ग्रहण किया गया है। इस पदके ग्रहण करनेसे प्रत्येकशरीर वनस्पति आदि सभी जीव बादर ही होते हैं यह बात स्पष्ट हो जाती है।

शंका -- इस सूत्रमें इन जीवोंके बादरपनेका कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि, ये जीव बादर ही होते हैं यह बात प्रतक्षयसिद्ध है?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, इन जीवोंके केवल बादरत्वके प्रतिपादन करनेके लिये यह सूत्र नहीं रचा गया है, किन्तु इन जीवोंके सूक्ष्मताके अभावका प्रतिपादन करना ही इस सूत्रके बनानेका फल है।

अब त्रस और स्थावर इन दोनों कार्योंसे रहित जीवोंके अस्तित्वके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

स्थावर और त्रस कायसे परे कायरहित अकायिक जीव होते हैं ॥४६॥

जो उस त्रस और स्थावररूप दो प्रकारकी कायराशिसे परे हैं वे सिद्ध जीव बादर और सूक्ष्म शरीरके कारणभूत कर्मसे रहित होनेके कारण अशरीर होते हैं, अतएव अकायिक कहलाते हैं।

शंका -- जीवप्रदेशोंके प्रचयरूप होनेके कारण सिद्ध जीव भी सकाय हैं, फिर उन्हें अकाय क्यों कहा?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, सिद्ध जीव अनादिकालीन स्वाभाविक बन्धनसे बद्ध जीव प्रदेशस्वरूप हैं, इसलिये उसकी अपेक्षा यहाँ कायपना नहीं लिया गया है।

शंका -- अनादिकालीन आत्म-प्रदेशोंके प्रचयको काय क्यों नहीं कहा?

समाधान --- नहीं, क्योंकि, यहां पर कर्म और नोकर्मरूप पर्यायसे परिणत मूर्त पुद्गलोंके सादि और सान्त प्रदेश प्रचयको ही कायरूपसे स्वीकार किया है।

विशेषार्थ --- यद्यपि पांच अस्तिकायोंमें सिद्ध जीवोंका भी ग्रहण हो जाता है। फिर भी यहां पर अनादिकालीन स्वाभाविक बन्धनसे बद्ध जीव-प्रदेशोंके प्रचयरूप कायकी

-----

कायत्वाभ्युपगमात्। 'इति' शब्द एक एवास्तु सूत्रपरिसमाप्त्यर्थत्वात्, न 'च' शब्दः, तस्य फलाभावादिति चेन्न, तस्य कायमार्गणपरिसमाप्तिप्रतिपादनफलत्वात्।

योगद्वारेण जीवद्रव्यप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

जोगाणुवादेण अत्थि मणजोगी वचिजोगी कायजोगी चेदि ॥४७॥

अत्र 'इति' शब्दः सूत्रसमाप्तिप्रतिपादनफलः। 'च' शब्दश्च त्रय एव योगाः सन्ति नान्ये इति योगसंख्यानियमप्रतिपादनफलः समुच्चयार्थो वा। योगस्य लक्षणं१ (मु. योगस्य तल्लक्षणं।) प्रागुक्तमिति नेदानीमुच्यते। मनसा योगो मनोयोगः। अथ स्यान्न द्रव्यमनसा सम्बन्धो मनोयोगः, मनोयोगस्य देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरकालस्थितिप्रसङ्गात्। न सक्रियावस्था योगः, योगस्याहोरात्रमात्रकालप्रसङ्गात्। न भावमनसा सम्बन्धो

अपेक्षा न होकर कर्म और नोकर्मके निमित्तसे होनेवाले सादि और सान्त प्रदेश प्रचयरूप कायकी अपेक्षा है। इसलिये इस विवक्षासे सिद्ध जीव अकायिक होते हैं, क्योंकि, उनके कर्म और नोकर्मके निमित्तसे होनेवाले प्रदेश प्रचयरूप कायका अभाव हो गया है।

शंका -- सूत्रमें 'इति' यह एक ही शब्द रहा आवे, क्योंकि, उसका फल सूत्रकी परिसमाप्ति है। परंतु 'च' शब्दकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि, प्रकृतमें उसका कोई प्रयोजन नहीं है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, कायमार्गणाकी परिसमाप्तिका प्रतिपादन करना ही यहां पर 'च' शब्दका फल है।

अब योगमार्गणाके द्वारा जीव द्रव्यके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

योगमार्गणाके अनुवादकी अपेक्षा मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीव हैं ॥४७॥

इस सूत्रमें जो 'इति' शब्द आया है उसका फल सूत्रकी समाप्तिका प्रतिपादन करना है। तथा जो 'च' शब्द दिया है उसका फल, योग तीन ही होते हैं, अधिक नहीं, इस प्रकार योगकी संख्याके नियमका प्रतिपादन करना है। अथवा 'च' शब्द समुच्चयरूप अर्थका प्रतिपादन करनेवाला समझना चाहिये।

योगका लक्षण पहले कह आये हैं, इसलिये यहां पर नहीं कहते हैं। मनके द्वारा होनेवाले योगको मनोयोग कहते हैं।

शंका -- यदि ऐसा है, तो द्रव्यमनसे संबन्ध होनेको तो मनोयोग कह नहीं सकते हैं, क्योंकि, ऐसा मानने पर मनोयोगकी कुछ कम तेतीस सागर प्रमाण स्थितिका प्रसंग प्राप्त हो जायगा। क्रियासहित अवस्थाको भी योग नहीं कह सकते हैं, क्योंकि, ऐसा मानने पर योगको दिन-रात मात्र कालका प्रसंग प्राप्त हो जायगा। अर्थात्, कोई कोई क्रिया दिन-रात

-----

मनोयोगः, तस्य ज्ञानरूपत्वतः उपयोगान्तर्भावात् इति? न त्रितयविकल्पोक्तदोषः, तेषामनभ्युपगमात् । कः पुनः मनोयोग इति चेद्भावमनसः समुत्पत्त्यर्थः प्रयत्नो मनोयोगः । तथा वचसः समुत्पत्त्यर्थः प्रयत्नो वाग्योगः । कायक्रियासमुत्पत्त्यर्थः प्रयत्नः काययोगः । त्रयाणां योगानां प्रवृत्तिक्रमेण उत नेति? नाक्रमेण, त्रिष्वक्रमेणैकस्यात्मनो योगविरोधात् (मु. योगनिरोधात्) <sup>६</sup> मनोवाक्कायप्रवृत्तयोऽक्रमेण क्वचिद् दृश्यन्त इति चेद्भवतु तासां तथा प्रवृत्तिः, दृष्टत्वात्, न तत्प्रयत्नानामक्रमेण वृत्तिः, तथोपदेशाभावादिति । अथ स्यात्प्रयत्नो हि नाम बुद्धिपूर्वकः, बुद्धिश्च मनोयोगपूर्विका, तथा च सिद्धो

-----

रहती है, इसलिये एक योगकी स्थिति भी अहोरात्र प्रमाण पड़ेगी । किन्तु आगममें तो एक योगकी स्थिति एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं मानी है । अतः क्रियासहित अवस्था भी योग नहीं हो सकता है । इसी प्रकार भावमनके साथ संबंध होनेको भी मनोयोग नहीं कह सकते हैं, क्योंकि, भावमन ज्ञानरूप होनेके कारण उसका उपयोगमें अन्तर्भाव हो जाता है?

समाधान -- इस प्रकार तीनों विकल्पोंके द्वारा दिये गये दोष प्राप्त नहीं होते हैं, क्योंकि, उक्त तीनों विकल्पोंको स्वीकार नहीं किया है ।

शंका -- तो फिर मनोयोगका क्या स्वरूप है?

समाधान -- भावमनकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न होता है उसे मनोयोग कहते हैं । उसी प्रकार वचनकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न होता है उसे वचनयोग कहते हैं और कायकी क्रियाकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न होता है उसे काययोग कहते हैं ।

शंका -- तीनों योगोंकी प्रवृत्ति युगपत् होती है या नहीं?

समाधान -- युगपत् नहीं होती है, क्योंकि, एक आत्माके तीनों योगोंकी प्रवृत्ति युगपत् मानने पर योगके विरोधका प्रसंग आ जायेगा । अर्थात् किसी भी आत्माके योग नहीं बन सकेगा ।

शंका -- कहीं पर मन, वचन और कायकी प्रवृत्तियाँ युगपत् देखी जाती हैं?

समाधान -- यदि देखी जाती हैं, तो उनकी युगपत् वृत्ति होओ । परंतु इससे, मन वचन और कायकी प्रवृत्तिके लिये जो प्रयत्न होते हैं उनकी युगपत् वृत्ति सिद्ध नहीं हो सकती है, क्योंकि, आगममें इस प्रकार उपदेश नहीं मिलता है ।

विशेषार्थ -- तीनों योगोंकी प्रवृत्ति एकसाथ हो सकती है, प्रयत्न नहीं ।

शंका -- प्रयत्न बुद्धिपूर्वक होता है, और बुद्धि मनोयोगपूर्वक होती है। ऐसी परिस्थितिमें मनोयोग शेष योगोंका अविनाभावी है, यह बात सिद्ध हो जाना चाहिये? अर्थात् अनेक प्रयत्न एक साथ होते हैं यह बात सिद्ध हो जायेगी?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, कार्य और कारण इन दोनोंकी एक कालमें उत्पत्ति नहीं हो सकती है ।

-----

मनोयोगः शेषयोगाविनाभावीति? न, कार्यकारणयोरेककाले समुत्पत्तिविरोधात् । तदस्यास्त्यस्मिन्निति इति सति सिद्धं मनोयोगी वाग्योगी काययोगीति ।

योगातीतजीवप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह --

अजोगी चेदि ॥४८॥

न योगी अयोगी । उक्तं च --

जेसिं ण सन्ति जोगा सुहासुहा पुण्ण-पाव संजणया ।

ते होंति अजोगिजिणा अणोवमाणंत-बल-कलिया१ (प्रा. पं. १, १०० । गो. जी. २४३. अत्र योगाभावे सति अयोगिकेवल्यादीनां बलाभावः प्रसज्यते अस्मदादिषु बलस्य योगाश्रितत्वदर्शनात्, इत्याशंक्य इदमुच्यते अनुपमानन्तबलकलिताः । जी. प्र., टी.) ॥१५५॥

मनोयोगस्य सामान्यतः एकविधस्य भेदप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

मणजोगो चउच्चिहो-सच्चमणजोगो मोसमणजोगो सच्चमोसमणजोगो

असच्चमोसमणजोगो ॥४९॥

सत्यमवितथममोघमित्यनर्थान्तरम् । सत्ये मनः सत्यमनः, तेन योगः सत्यमनोयोगः । तद्विपरीतो मोषमनोयोगः । तदुभययोगात्सत्यमोषमनोयोगः । उक्तं च --

-----

वह मनोयोग जिसके या जिस जीवमें होता है उसे मनोयोगी कहते हैं । यहां पर मनोयोगे शब्दसे 'इन्' प्रत्यय कर देने पर मनोयोगी शब्द बन जाता है । इसी प्रकार वाग्योगी और काययोगी शब्द भी बन जाते हैं । अब योग रहित जीवोंके प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

अयोगी जीव हैं ॥४८॥

जिनके योग नहीं पाया जाता है वे अयोगी हैं। कहा भी है---

जिन जीवोंके पुण्य और पापके उत्पादक शुभ और अशुभ योग नहीं पाये जाते हैं वे अनुपम और अनन्त-बल सहित अयोगीजिन कहलाते हैं ॥१५५॥

सामान्यकी अपेक्षा एक प्रकारके मनोयोगके भेदोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं -  
मनोयोग चार प्रकारका है, सत्यमनोयोग, मृषामनोयोग, सत्यमृषामनोयोग और असत्यमृषामनोयोग ॥४९॥

सत्य, अवितथ और अमोघ ये एकार्थवाची शब्द हैं। सत्यके विषयमें होनेवाले मनको सत्यमन कहते हैं, और उसके द्वारा जो योग होता है उसे सत्यमनोयोग कहते हैं। इससे विपरीत योगको मृषामनोयोग कहते हैं। जो योग सत्य और मृषा इन दोनोंके संयोगसे उत्पन्न होता है उसे सत्यमृषामनोयोग कहते हैं। कहा भी है ---

-----  
सद्भावो सच्चमणो जो जोगो तेण सच्चमणजोगो ।

तद्विवरीदो मोसो जाणुभयं सच्चमोसं ति१ (प्रा. पं. १, ८९। गो. जी. २१८.

सद्भावः सत्यार्थः तद्विषयं मनः सत्यमनः, सत्यार्थज्ञानमनजननशक्तिरूपं भावमन इत्यर्थः। X X

तद्विपरीतः असत्यार्थविषय- ज्ञानजनितशक्तिरूपभावमनसा जनितप्रयत्न-विशेषः मृषा

असत्यमनोयोगः। उभय सत्यमृषार्थ- ज्ञानजननशक्तिरूपभावमनोजनितप्रयत्नविशेषः

उभयमनोयोगः<sup>९</sup> जी. प्र., टी.) ॥१५६॥

ताभ्यां सत्यमोषाभ्यां व्यतिरिक्तोऽसत्यमोषमनोयोगः। तर्ह्युभयसंयोगजोऽस्तु? न, तस्य तृतीयभङ्गेऽन्तर्भावात्। कोऽपरश्चतुर्थो मनोयोग इति चेदुच्यते। समनस्केषु मनःपूर्विका वचसः प्रवृत्तिः अन्यथानुपलम्भात्। तत्र सत्यवचननिबन्ध-नमनसा योगः सत्यमनोयोगः। तथा मोषवचननिबन्धनमनसा योगो मोषमनोयोगः। उभयात्मकवचननिबन्धनमनसा योगः सत्यमोषमनोयोगः। त्रिविधवचनव्यतिरिक्ता-मन्त्रणादिवचननिबन्धनमनसा योगोऽसत्यमोषमनोयोगः। नायमर्थो मुख्यः, सकलमनसामव्यापकत्वात्। कः पुनर्निरवद्योऽर्थश्चेद्यथावस्तु प्रवृत्तं मनः सत्यमनः।

सद्भाव अर्थात् सत्यार्थको विषय करनेवाले मनको सत्यमन कहते हैं और उससे जो योग होता है उसे सत्यमनोयोग कहते हैं। इससे विपरीत योगको मृषामनोयोग कहते हैं। उभयरूप योगको सत्यमृषामनोयोग जानो ॥१५६॥

सत्यमनोयोग और मृषामनोयोगसे व्यतिरिक्त योगको असत्यमृषामनोयोग कहते हैं।

शंका -- तो असत्यमृषामनोयोग (अनुभय) उभयसंयोगज रहा आवे?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, उभयसंयोगजका तीसरे भेदमें अन्तर्भाव हो जाता है।

शंका -- तो फिर इनसे भिन्न चौथा अनुभय मनोयोग कौनसा है?

समाधान -- समनस्क जीवोंमें वचनप्रवृत्ति मनपूर्वक देखी जाती है, क्योंकि, मनके बिना उनमें वचनप्रवृत्ति नहीं पाई जाती है। इसलिये उन चारोंमेंसे सत्यवचननिमित्तक मनके निमित्तसे होनेवाले योगको सत्यमनोयोग कहते हैं। असत्य वचन-निमित्तक मनसे होनेवाले योगको असत्यमनोयोग कहते हैं। सत्य और मृषा इन दोनोंरूप वचननिमित्तक मनसे होनेवाले योगको उभय मनोयोग कहते हैं। उक्त तीनों प्रकारके वचनोंसे भिन्न आमन्त्रण आदि अनुभयरूप वचन-निमित्तक मनसे होनेवाले योगको अनुभयमनोयोग कहते हैं। फिर भी उक्त प्रकारका कथन मुख्य नहीं है, क्योंकि, इसकी संपूर्ण मनके साथ व्याप्ति नहीं पाई जाती है। अर्थात् उक्त कथन उपचरित है, क्योंकि, वचनकी सत्यादिकतासे मनमें सत्य आदिका उपचार किया गया है।

शंका -- तो फिर यहाँ पर निर्दोष अर्थ कौनसा लेना चाहिये?

-----

विपरीतमसत्यमनः। व्दयात्मकमुभयमनः। संशयानध्यवसायज्ञाननिबन्धनमसत्यमोषमन इति। अथवा तद्वचनजननयोग्यतामपेक्ष्य चिरन्तनोऽप्यर्थः समीचीन एव। उक्तं च ---

ण य सच्च-मोस-जुतो जो दु मणो सो असच्चमोसमणो ।

जो जोगो तेण हवे असच्चमोसो दु मणजोगो१

(प्रा. पं. १, ९०। गो. जी. २१९) ॥१५७॥

मनसो भेदमभिधाय साम्प्रतं गुणस्थानेषु तत्सत्त्व२ (मु. तत्स्वरूप) निरुपणार्थमुत्तरसूत्रव्यमाह३ (मु. सूत्रमाह।) ---

मणजोगो सच्चमणजोगो असच्चमोसमणजोगो सण्णि-मिच्छाइड्ढि-प्पहुडि जाव सजोगिकेवलि ति  
॥५०॥

मनोयोग इति पञ्चमो मनोयोगः क्व लब्धश्चेन्नैष दोषः चतसृणां मनोव्यक्तीनां सामान्यस्य  
पञ्चमत्वोपपत्तेः । किं तत्सामान्यमिति चेन्मनसः सादृश्यम् ।

समाधान -- जहां जिस प्रकारकी वस्तु विद्यमान हो, वहां उसी प्रकारसे प्रवृत्ति करनेवाले मनको सत्यमन कहते हैं । इससे विपरीत मनको असत्यमन कहते हैं । सत्य और असत्य इन दोनोंरूप मनको उभयमन कहते हैं । तथा जो संशय और अनध्यवसायरूप ज्ञानका कारण है उसे अनुभय मन कहते हैं । अथवा मनमें सत्य, असत्य आदि वचनोंको उत्पन्न करनेरूप योग्यता है, उसकी अपेक्षासे चिरन्तन अर्थभी समीचीन है । कहा भी है ---

जो मन सत्य और मृषासे युक्त नहीं होता है उसको असत्यमृषामन कहते हैं, और उससे जो योग अर्थात् प्रयत्नविशेष होता है उसे असत्यमृषामनोयोग कहते हैं ॥१५७॥

मनोयोगके भेदोंका कथन करके अब गुणस्थानोंमें उसके सत्त्वका निरूपण करनेके लिये आगेके दो सूत्र कहते हैं ---

सामान्यसे मनोयोग और विशेषरूपसे सत्यमनोयोग तथा असत्यमृषामनोयोग संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली पर्यन्त होते हैं ॥५०॥

शंका -- चार मनोयोगोंके अतिरिक्त मनोयोग इस नामका पांचवाँ मनोयोग कहांसे आया?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, भेदरूप चार प्रकारके मनोयोगोंमें रहनेवाले सामान्य योगके पांचवी संख्या बन जाती है ।

शंका -- वह सामान्य क्या है जो चार प्रकारके मनोयोगोंमें पाया जाता है?

समाधान -- यहां पर सामान्यसे मनकी सदृशताका ग्रहण करना चाहिये ।

मनसः समुत्पत्तये प्रयत्नो मनोयोगः । पूर्वप्रयोगात् प्रयत्नमन्तरेणापि मनसः प्रवृत्तिर्दृश्यते इति चेद्भतु, न तेन मनसा योगोऽत्र मनोयोग इति विवक्षितः, तन्निमित्त-प्रयत्नसम्बन्धस्य विवक्षितत्वात् १ (मु. सम्बन्धस्य परिस्पन्दरूपस्य विवक्षितत्वात् १) ६

भवतु केवलिनः सत्यमनोयोगस्य सत्त्वम् तत्र वस्तुयाथात्म्यावगतेः सत्त्वात् । नासत्यमोषमनोयोगस्य सत्त्वम्, तत्र संशयानध्यवसाययोरभावादिति? न, संशयानध्यवसायनिबन्धनवचनहेतुमनसोऽप्यसत्यमोषमनस्त्वमस्तीति तत्र तस्य सत्त्वाविरोधात् । किमिति केवलिनो वचनं संशयानध्यवसायजनकमिति चेन्न,२ (मु. चेत्स्वार्था) स्वार्थानन्त्याच्छ्रोतुरावरणक्षयोपशमातिशयाभावात् । तीर्थकरवचनमनक्षरत्वाद् ध्वनिरूपम्, तत एव तदेकम् । एकत्वान्न तस्य द्वैविध्यं घटत इति चेन्न, तत्र स्यादित्यादि असत्यमोषवचनसत्त्व -

मनकी उत्पत्तिकेलिये जो प्रयत्न होता है उसे मनोयोग कहते हैं ।

शंका -- पूर्व-प्रयोगसे प्रयत्नके विना भी मनकी प्रवृत्ति देखी जाती है?

समाधान -- यदि प्रयत्नके विना भी मनकी प्रवृत्ति होती है तो होने दो, क्योंकि, ऐसे मनसे होनेवाले योगको मनोयोग कहते हैं, यह अर्थ यहां पर विवक्षित नहीं है । किंतु मनके निमित्तसे जो प्रयत्नविशेष होता है, वह यहां पर योगरूपसे विवक्षित है ।

शंका -- केवली जिनके सत्यमनोयोगका सद्भाव रहा आवे, क्योंकि, वहां पर वस्तुके यथार्थ ज्ञानका सद्भाव पाया जाता है । परंतु उनके असत्यमृषामनोयोगका सद्भाव संभव नहीं है, क्योंकि, वहां पर संशय और अनध्यवसायरूप ज्ञानका अभाव है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, संशय और अनध्यवसायके कारणरूप वचनका कारण मन होनेसे उसमें भी अनुभयरूप धर्म रह सकता है । अतः सयोगी जिनमें अनुभय मनोयोगका सद्भाव स्वीकार कर लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका -- केवलीके वचन संशय और अनध्यवसायको पैदा करते हैं इसका क्या तात्पर्य है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, केवलीके ज्ञानके विषयभूत पदार्थ अनन्त होनेसे और श्रोताके आवरणकर्मका क्षयोपशम अतिशयरहित होनेसे केवलीके वचनोंके निमित्तसे संशय और अनध्यवसायकी उत्पत्ति हो सकती है ।

शंका -- तीर्थकरके वचन अनक्षररूप होनेके कारण ध्वनिरूप हैं, और इसलिये वे एकरूप हैं, और एकरूप होनेके कारण वे सत्य और अनुभय इस प्रकार दो प्रकारके नहीं हो सकते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, केवलीके वचनमें 'स्यात्' इत्यादिरूपसे अनुभयरूप वचनका सद्भाव पाया जाता है, इसलिये केवलीकी ध्वनि अनक्षरात्मक है यह बात असिद्ध है।

-----

तस्तस्य ध्वनेरनक्षरत्वासिद्धेः। साक्षरत्वे च प्रतिनियतैकभाषात्मकमेव तद्वचनं नाशेषभाषारूपं भवेदिति चेन्न, क्रमविशिष्टवर्णात्मकभूयःपडिःक्तकदम्बकस्य प्रतिप्राणिप्रवृत्तस्य ध्वनेरशेषभाषारूपत्वाविरोधात्। तथा च कथं तस्य ध्वनित्वमिति चेन्न, एतद्भाषारूपमेवेति निर्देष्टुमशक्यत्वतः तस्य ध्वनित्वसिद्धेः१ (वयणेण विणा अत्थपदुप्पायणं ण संभवइ, सुहुमत्थाणं सण्णाए परुवणाणुववत्तीदो। ण चाणएए (चाणक्खराए?) इ णुणीए अत्थपदुप्पायणं जुज्जदे, अणक्खरभासतिरिक्खे मोत्तूण अण्णेसिं ततो अत्थावगमाभावादो। ण च दिव्वज्जुणी अणक्खरप्पिया चेव, अड्डारससत्तसयभासकुभासप्पियत्तादो। धवला अ. पृ. ६९३ सूत्रपौरुषीषु भगवतस्तीर्थकरस्य ताल्वोष्ठपुटविचलनमंतरेण सकलभाषास्वरुपदिव्यध्वनिधर्मकथनविधानं X X कथ्यते। धवला. अ. पृ. ७०६. सा वि य णं भगवओ अद्धमागहा भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आयरियमणायरियाणं दुपयचउप्पयमियपसुपक्खिसिरीसिवाणं अप्पणो भासत्ताए परिणमइ। सम. सू. ३४. अष्टादश-महाभाषासप्तशतक्षुल्लकभाषासंज्ञ्यक्षरानक्षरभाषात्मकत्यक्ततालुदंतोष्ठकंटव्यापारभव्यजनान-न्दकयुगपत्सर्वोत्तरप्रतिपादकदिव्यध्वन्युपेतः। गो. जी., जी. प्र., टी. १ X X सारयनवत्थणियमहुरगंभीरकोंचणिग्घोदुंदुभिरसरे उरे वित्थडाए कंठेऽवड्डियाए सिसरे समाइण्णाए पुण्णरत्ताए सव्वभासाणुगामिणीए सरस्सहए जोयणणीहारिणा सरेणं अद्धमागहाए भासाए भासति अरिहा धम्मं परिकहेइ। X X सा वि य णं अद्धमागहा भासा तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अप्पणो परिणामेणं परिणमइ। औप सू. ३४. व्याप्नोत्यायोजनं वाणी सर्वभाषानुगा प्रभोः॥ तथाहुः श्री हेमसूरय काव्यानुशासने, अकृत्रिमस्वादुपदां परमार्थाभिधायिनीम्। सर्व- भाषापरिणतां जैनीं वाचमुपास्महे। देवा दैवीं नरा नारीं शवराश्चापि शाबरीम्। तिर्पत्रचोऽपि च तैरश्चीं मेनिरे भगवद्गिरम्॥ यथा जलधरस्याभ आश्रयाणां विशेषतः। नानारसं भवत्येव वाणी भगवतामपि॥ स्यात्प्रभोर्मूलभाषा च स्वभावादर्धमागधी। स्यातां व्दे लक्षणे ह्यस्यां मागध्याः प्राकृतस्य च॥ यतैकेतैव वक्ता भूयसामपि संशयाः। छिद्यन्ते वक्ति तत्सर्वो ज्ञाताशेषवचोविधिः॥ क्रमच्छेदे संशयानामसंख्यत्वाद्दपुष्पताम्। असंख्येनापि कालेन भवेत् कथमनुग्रहः॥ शब्दशक्तेर्विचित्रत्वात् सन्तीदृशि वचांसि च। प्रयुक्तैरुत्तरं यत्स्या-द्युगपद्भूयसामपि॥

सरःशरस्वरार्थेन भिल्लेन युगपद्यथा। 'सरो नत्थि' ति वाक्येन प्रियास्तिस्त्रोऽपिबोधिता।। लो. प्र. ३०, ६३४-६४२. सर्वार्धमागधीया भाषा भवति, कोऽर्थ? अर्धं भगवद्भाषाय मगधदेशभाषात्मके, अर्धं च सर्वभाषात्मकं। कथमेव देवोपनीतत्वं तदतिशयस्येति चेत् ? मगधदेवसन्निधाने तथापिरिणतया भाषया संस्कृतभाषया प्रवर्तते। षट्प्रा. ४.३२ (सं. टी.))<sup>६</sup> अतीन्द्रियज्ञानत्वान्न केवलिनो मन इति चेन्न, द्रव्यमनसः सत्त्वात्<sup>७</sup> भवतु द्रव्यमनसः सत्त्वं न तत्कार्यस्य क्षायोपशमिकज्ञानस्याभावः, अपि तु तदुत्पादने

शंका -- केवलीकी ध्वनिको साक्षर मान लेने पर उनके वचन प्रतिनियत एक भाषारूप ही होंगे, अशेष भाषारूप नहीं हो सकेंगे?

समाधान -- नहीं क्योंकि, क्रमविशिष्ट, वर्णात्मक, अनेक पंक्तियोंके समुच्चयरूप और अलग अलग प्रत्येक श्रोतामें प्रवृत्त होनेवाली ऐसी केवलीकी ध्वनि संपूर्ण भाषारूप होती है ऐसा मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका -- जब कि वह अनेक भाषारूप है तो उसे ध्वनिरूप कैसे माना जा सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, केवलीके वचन इसी भाषारूप हैं, ऐसा निर्देश नहीं किया जा सकता है, इसलिये उनके वचन ध्वनिरूप हैं यह बात सिद्ध हो जाती है।

शंका -- केवलीके अतीन्द्रिय ज्ञान होता है, इसलिये उनके मन नहीं पाया जाता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, उनके द्रव्यमनका सद्भाव पाया जाता है।

शंका -- केवलीके द्रव्यमनका सद्भाव रहा आवे, परंतु वहां पर उसका कार्य नहीं पाया जाता है?

समाधान -- द्रव्यमनके कार्यरूप उपयोगात्मक क्षायोपशमिक ज्ञानका अभाव भले ही रहा आवे, परंतु उसके उत्पन्न करनेमें प्रयत्न तो पाया ही जाता है, क्योंकि, उसका प्रयत्न कोई प्रतिबन्धक कारण नहीं है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि उससे आत्माका जो योग होता है उसे मनोयोग कहते हैं।

प्रयत्नोऽस्त्येव, तस्य प्रतिबन्धकत्वाभावात्। तेनात्मनो योगः मनोयोगः। विद्यमानोऽपि तदुत्पादने प्रयत्नः किमिति स्वकार्यं न विदध्यादिति चेन्न, तत्सहकारिकारणक्षायोपशमाभावात्। असतो मनसः कथं वचनव्दितयसमुत्पत्तिरिति चेन्न, उपचारतस्तयोस्ततः समुत्पत्तिविधानात्।

शेषमनसोर्गुणस्थानप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

मोसमणजोगो सच्चमोसमणजोगो सण्णमिच्छइड्ढि-प्पहुडि जाव खीण-कसाय-  
वीयराय-छदुमत्था ति ॥५१॥

भवतु नाम क्षपकोशमकानां सत्यस्यासत्यमोषस्य च सत्त्वं नेतरयोः,

-----

शंका -- केवलीके द्रव्यमनको उत्पन्न करनेमें प्रयत्न विद्यमान रहते हुए भी वह अपने कार्यको क्यों नहीं करता है।

समाधान -- नहीं, क्योंकि, केवलीके मानसिक ज्ञानके सहकारी कारणरूप क्षयोपशमका अभाव है, इसलिये उनके मनोनिमित्तक ज्ञान नहीं होता है।

शंका -- जब कि केवलीके यथार्थमें अर्थात् क्षायोपशमिक मन नहीं पाया जाता है, तो उनके सत्य और अनुभय इन दो प्रकारकी वचनोंकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है?

समाधान--- नहीं, क्योंकि, उपचारसे मनके द्वारा उन दोनों प्रकारके वचनोंकी उत्पत्तिका विधान किया गया है।

अब शेष दो मनोयोगोंके गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं -

असत्यमनोयोग और उभयमनोयोग संज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-  
छन्नस्थ गुणस्थानतक पाये जाते हैं ॥५१॥

शंका -- क्षपक और उपशमक जीवोंके सत्यमनोयोग और अनुभयमनोयोगका सद्भाव

-----

अप्रमादस्य प्रमादविरोधित्वादिति? न, रजोजुषां विपर्ययानध्यवसायज्ञानकारण-मनसः१ (मु. वसायाज्ञान)  
सत्त्वाविरोधात्। न च तद्योगात्प्रमादिनस्ते, प्रमादस्य मोहपर्यायत्वात्।

वाग्योगभेदप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह --

वचिजोगो चउव्विहो सच्चवचिजोगो मोसवचिजोगो सच्च-मोसवचिजोगो  
असच्चमोसवचिजोगो चेदि ॥५२॥

चतुर्विधमनोभ्यः समुत्पन्नवचनानि चतुर्विधान्यपि तत्तद्व्यपदेशं२ (मु. तद्व्यपदेशं।) प्रतिलभन्ते  
तथा प्रतीयते च। उक्तं च ---

दसविह-सच्चे वयणे जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो।

तद्विवरीदो मोसो जाणुभयं सच्चमोसं ति

<sup>३</sup> ( प्रा. पं. १, ९१ । गो. जी. २२०. ) ।।१५८।।

जो णेव सच्च-मोसो तं जाण असच्चमोसवचिजोगं४ (मु. वचिजोगो ।) ।

अमणाणं जा भासा सण्णीणामंतणीयादी५

( प्रा. पं. १, ९२, गो. जी. २२१. ) ।।१५९।।

-----

रहा आवे, परंतु बाकीके दो अर्थात् असत्यमनोयोग और उभयमनोयोगका सद्भाव नहीं हो सकता है, क्योंकि, इन दोनोंमे रहनेवाला अप्रमाद असत्य और उभय मनके कारणभूत प्रमादका विरोधी है? अर्थात् क्षपक और उपशमक प्रमादरहित होते हैं, इसलिये उनके असत्यमनोयोग और उभयमनोयोग नहीं पाये जा सकते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, आवरणकर्मसे युक्त जीवोंके विपर्यय ज्ञान और अनध्यवसाय ज्ञानके कारणभूत मनके सद्भाव मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है। परंतु इसके संबन्धसे क्षपक या उपशमक जीव प्रमत्त नहीं माने जा सकते हैं, क्योंकि, प्रमाद मोहकी पर्याय है।

अब वचनयोगके भेदोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं---

वचनयोग चार प्रकारका है, सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग उभयवचनयोग और अनुभय वचनयोग ।।५२।।

चार प्रकारके मनसे उत्पन्न हुए चार प्रकारके वचन भी उस उस संज्ञाको प्राप्त होते हैं और ऐसी प्रतीति भी होती है। कहा भी है --

दश प्रकारके सत्यवचनमें वचनवर्गणाके निमित्तसे जो योग होता है उसे सत्यवचनयोग कहते हैं। उससे विपरीत योगको मृषावचनयोग कहते हैं। सत्यमृषारूप वचन योगको उभयवचनयोग कहते हैं ।।१५८।।

जो न तो सत्य रूप है और न मृषारूप ही है वह असत्यमृषावचनयोग है। असंज्ञी

-----

वचसो भेदमभिधाय गुणस्थानेषु तत्सत्त्वप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रत्रितयमाह ---

वचिजोगो असच्चमोसवचिजोगो बीइंदिय-प्पहुडि जाव सजोगिकेवलि ति ।।५३।।

असत्यमोषमनोनिबन्धनवचनमसत्यमोषवचनमिति प्रागुक्तम्, तद् व्दीन्द्रिया-दीनां मनोरहितानां कथं भवेदिति? नायमेकान्तोऽस्ति सकलवचनानि मनस एव समुत्पद्यन्त इति, मनोरहितकेवलानां वचनाभावासंजनात्<sup>१</sup> (मु. अ. संजननात् । )<sup>६</sup> विकलेन्द्रियाणां मनसा विना न ज्ञानसमुत्पत्तिः । ज्ञानेन विना न वचनप्रवृत्तिरिति चेन्न, मनस एव ज्ञानमुत्पद्यत इत्येकान्ताभावात् । भावे वा न शेषेन्द्रियेभ्यो<sup>२</sup> (मु. नाशेषेन्द्रियेभ्यो ।) ज्ञानसमुत्पत्तिः, मनसः समुत्पन्नत्वात् । नैतदपि, दृष्टश्रुतानुभूतविषयस्य मानसप्रत्ययस्यान्यत्र वृत्तिविरोधात् । न चक्षुरादीनां सहकार्यपि<sup>३</sup> (मु. प्रयत्नात्म) सप्रयत्नात्मसहकारिभ्यः इन्द्रियेभ्यस्तदुत्पत्त्युपलम्भात् ।

-----

जीवोंकी भाषा और संज्ञी जीवोंकी आमन्त्रणी आदि भाषाएं इसके उदाहरण हैं ॥१५९॥

इस प्रकार वचनयोगके भेद कहकर अब गुणस्थानोंमें उसके सत्वके प्रतिपादन करनेके लिये आगेके तीन सूत्र कहते हैं ---

सामान्यसे वचनयोग और विशेषरूपसे अनुभयवचनयोग व्दीन्द्रिय जीवोंसे लेकर संयोगिकेवली गुणस्थानतक होता है ॥५३॥

शंका -- अनुभयरूप मनके निमित्तसे जो वचन उत्पन्न होते हैं उन्हें अनुभयवचन कहते हैं, यह बात पहले कही जा चुकी है। ऐसी हालतमें मनरहित व्दीन्द्रियादिक जीवोंके अनुभयवचन कैसे हो सकते हैं?

समाधान -- यह कोई एकान्त नहीं है कि संपूर्ण वचन मनसे ही उत्पन्न होते हैं। यदि संपूर्ण वचनोंकी उत्पत्ति मनसे ही मान ली जावे तो मनरहित केवलियोंके वचनोंका अभाव प्राप्त हो जायेगा।

शंका -- विकलेन्द्रिय जीवोंके मनके विना ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है और ज्ञानके विना वचनोंकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, मनसे ही ज्ञानकी उत्पत्ति होती है यह कोई एकान्त नहीं है। यदि मनसे ही ज्ञानकी उत्पत्ति होती है यह एकान्त मान लिया जाता है, तो बाकीके इन्द्रियोंसे ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकेगी, क्योंकि, संपूर्ण ज्ञानकी उत्पत्ति मनसे मानते हो। अथवा, मनसे समुत्पन्नत्वरूप धर्म इन्द्रियोंमें रह भी तो नहीं सकता है, क्योंकि, दृष्ट, श्रुत और अनुभूतको विषय करनेवाले मानसज्ञानकी अन्यत्र वृत्ति माननेमें विरोध आता है। यदि मनको चक्षु आदि इन्द्रियोंका सहकारी कारण माना जावे तो

भी नहीं बनता है, क्योंकि, प्रयत्न सहित आत्माके सहकारकी अपेक्षा रखनेवाली इन्द्रियोंसे इन्द्रियज्ञानकी उत्पत्ति पाई जाती है।

शंका -- समनस्क जीवोंमें तो ज्ञानकी उत्पत्ति मनोयोगसे ही होती है?

-----  
समनस्केषु ज्ञानस्य प्रादुर्भावो मनोयोगादेवेति चेन्न, केवलज्ञानेन व्यभिचारात्। समनस्कानां यत्क्षायोपशमिकज्ञानं१ (मु. शमिकं ज्ञानं।) तन्मनोयोगात्स्यादिति चेन्न, इष्टत्वात्। मनोयोगाद्बचनमुत्पद्यत इति प्रागुक्तं तत्कथं घटत इति चेन्न, उपचारेण तत्र मानसस्य ज्ञानस्य मन इति संज्ञां विधायोक्तत्वात्। कथं विकलेन्द्रियवचसोऽसत्यमोषत्वमिति चेदनध्यवसायहेतुत्वात्। ध्वनिविषयोऽध्यवसायः समुपलभ्यत इति चेन्न, वक्त्रभिप्रायः२ (मु. वक्तुरभिप्राय) विषयाध्यवसायाभावस्य विवक्षितत्वात्।

सत्यवचसो गुणनिरूपणार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

सच्चवचिजोगो सण्णमिच्छाइड्ढि-प्पहुडि जाव सजोगि-केवलि ति ॥५४॥

दशविधानामपि३ (जणपदसम्मदितवणाणामे रुवे पडुच्च ववहारे। संभावणे य भावे उवमाए दसविहं सच्चं॥ भत्तं देवी चंदप्पहपडिमा तह य होदी जिणदत्तो। सेदो दिग्धो रज्झदि करो ति य जं हवे वयणं॥ गो. जी. २२२, २२३.)

सत्यानामेतेषु गुणस्थानेषु सत्त्वस्य विरोधासिद्धेः तत्र भवन्ति

-----  
समाधान -- नहीं, क्योंकि, ऐसा मानने पर केवलज्ञानसे व्यभिचार आता है।

शंका -- तो फिर ऐसा माना जाय कि समनस्क जीवोंके जो क्षायोपशमिक ज्ञान उत्पन्न होता है वह मनोयोगसे होता है?

समाधान -- यह कोई शंका नहीं, क्योंकि, यह तो इष्ट ही है।

शंका -- मनोयोगसे वचन उत्पन्न होते हैं, यह जो पहले कहा जा चुका है वह कैसे घटित होगा?

समाधान -- यह शंका कोई दोषजनक नहीं है, क्योंकि, 'मनोयोगसे वचन उत्पन्न होते हैं' यहां पर मानस ज्ञानकी 'मन' यह संज्ञा उपचारसे रखकर कथन किया है।

शंका -- विकलेन्द्रियोंके वचनोंमे अनुभयपना कैसे आ सकता है?

समाधान -- विकलेन्द्रियोंके वचन अनध्यवसायरुप ज्ञानके कारण हैं, इसलिये उन्हें अनुभयरुप कहा है।

शंका -- उनके वचनोंमे ध्वनिविषयक अध्यवसाय अर्थात् निश्चय तो पाया जाता है, फिर उन्हें अनध्यवसायका कारण क्यों कहा जाय?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, यहां पर अनध्यवसायसे वक्ताका अभिप्रायविषयक अध्यवसायका अभाव विवक्षित है।

अब सत्यवचनयोगका गुणस्थानोंमें निरुपण करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

सत्यवचनयोग संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिवेन्नली गुणस्थानतक होता है ॥५४॥

दशों ही प्रकारके सत्यवचनोंके सूत्रोक्त तेरह गुणस्थानोंमें पाये जानेंमें कोई विरोध

-----

दशापि सत्यानीति ।

शेषवचसोः गुणस्थाननिरुपणार्थमुत्तरसूत्रमाह --

मोसवचिजोगो सच्चमोसवचिजोगो सण्णिमिच्छाङ्घ्रि-प्पहुडि जाव खीण-कसाय-वीयराय-  
छदुमत्था ति ॥५५॥

क्षीणकषायस्य वचनं कथमसत्यमिति चेन्न, असत्यनिबन्धनाज्ञानसत्त्वापेक्षया तत्र  
तत्सत्त्वप्रतिपादनात् । तत एव नोभयसंयोगोऽपि विरुद्ध इति । वाचंयमस्य क्षीणकषायस्य कथं  
वाग्योगश्चेन्न, तत्राप्यन्तर्जल्पस्य१ (मु. तत्रान्तर्जल्पस्य ।) सत्त्वाविरोधात् ।

काययोगसंख्याप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह --

कायजोगो सत्तविहो-ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो वेउव्वियकायजोगो  
वेउव्वियमिस्सकायजोगो आहारकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो कम्मइयकायजोगो चेदि ॥५६॥

औदारिकशरीरजनितवीर्याज्जीवप्रदेशपरिस्पन्दनिबन्धनप्रयत्नः औदारिक -

-----

नहीं आता है, इसलिये उनमें दशों प्रकारके सत्यवचन होते हैं ।

शेष वचनयोगोंका गुणस्थानोंमें निरुपण करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

मृषावचनयोग और सत्यमृषावचनयोग संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ गुणस्थानतक पाये जाते हैं ॥५५॥

शंका -- जिसकी कषायें क्षीण हो गई हैं, ऐसे जीवकेवचन असत्य कैसे हो सकते हैं?

समाधान -- ऐसी शंका व्यर्थ है, क्योंकि, असत्यवचनका कारण अज्ञान बारहवें गुणस्थानतक पाया जाता है, इस अपेक्षासे वहां पर असत्यवचनके सद्भावका प्रतिपादन किया है। और इसीलिये उभयसंयोगज सत्यमृषावचन भी बारहवें गुणस्थानतक होता है, इस कथनमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका -- वचनगुप्तिका पूरी तरहसे पालन करनेवाले कषायरहित जीवोंकेवचनयोग कैसे संभव है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, कषायरहित जीवोंमेंभी अन्तर्जल्पके पाये जानेमें कोई विरोध नहीं आता है?

अब काययोगकी संख्याके प्रतिपादन करने के लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

काययोग सात प्रकारका है-- औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग वैक्रियिककाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग ॥५६॥

औदारिक शरीरद्वारा (औदारिक वर्गणाओंसे) उत्पन्न हुई शक्तिसे जीवके प्रदेशोंमें --

-----

काययोगः। कर्मणौदारिकस्कन्धाभ्यां जनितवीर्यात्तत्परिस्पन्दनार्थः प्रयत्नः औदारिक-मिश्रकाययोगः। उदारः पुरुः महानित्यर्थः, तत्र भवं शरीरमौदारिकम्। अथ स्यान्न महत्त्वमौदारिकशरीरस्य? कथमेतदवगम्यते? वर्गणासूत्रात्। किं तद्वर्गणासूत्रमिति चेदुच्यते 'सव्वत्थोवा ओरालिय-सरीर-दव्व-वग्गणा-पदेसा, वेउव्विय-सरीर-दव्व-वग्गणा-पदेसा असंखेज्जगुणा, आहार-सरीर-दव्व-वग्गणा-पदेसा, असंखेज्जगुणा, तेया-सरीर-दव्व-वग्गणा-पदेसा अणंतगुणा, भासा-दव्व-वग्गणा-पदेसा अणंतगुणा मणदव्व-वग्गणा-पदेसा अनंतगुणा कम्मइय-सरीर-दव्व -वग्गणा-पदेसा अणंतगुणा त्ति'। न, अवगाहनापेक्षया औदारिकशरीरस्य महत्त्वोपपत्तेः। यथा 'सव्वत्थोवा कम्मइय-सरीर-दव्व-वग्गणाए ओगाहणा असंखेज्जगुणा, तेया-सरीर-दव्व-वग्गणाए ओगाहणा असंखेज्जगुणा, तेया-सरीर-दव्व-वग्गणाए ओगाहणा असंखेज्जगुणा, आहार-सरीर-दव्व-वग्गणाए ओगाहणा असंखेज्जगुणा, वेउव्विय-सरीर-दव्व-वग्गणाए ओगाहणा असंखेज्जगुणा, ओरालिय-सरीर-दव्व-वग्गणाए

परिस्पन्दका कारणभूत जो प्रयत्न होता है उसे औदारिककाययोग कहते हैं। कर्मण और औदारिक वर्गणाओंके द्वारा उत्पन्न हुए वीर्यसे जीवके प्रदेशोंमें परिस्पन्दके लिये जो प्रयत्न होता है उसे औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं। उदार, पुरु और महान् ये एक ही अर्थके वाचक शब्द है। उसमें जो शरीर उत्पन्न होता है उसे औदारिकशरीर कहते हैं।

शंका -- औदारिक शरीर महान् है, यह बात नहीं बनती है?

प्रतिशंका -- यह कैसे जाना?

शंका का समर्थन -- वर्गणासूत्रसे यह बात मालूम पडती है।

प्रतिशंका -- वह वर्गणासूत्र कौनसा हैं?

शंका का समर्थन -- जिससे औदारिक शरीरकी महानता सिद्ध नहीं होती है वह वर्गणासूत्र इसप्रकार है- 'औदारिकशरीर द्रव्यसंबन्धी वर्गणाके प्रदेश सबसे थोडे हैं। उससे असंख्यातगुणे वैक्रियकशरीरद्रव्यसंबन्धी वर्गणाके प्रदेश हैं। उससे असंख्यातगुणे आहारकशरीर-द्रव्यसंबन्धी वर्गणाके प्रदेश हैं। उससे अनन्तगुणे तैजसशरीरद्रव्यसंबन्धी वर्गणाके प्रदेश हैं। उससे अनन्तगुणे भाषाद्रव्यवर्गणाके प्रदेश हैं' उससे अनन्तगुणे मनोद्रव्यवर्गणाके प्रदेश हैं, और उससे अनन्तगुणे कर्मणशरीरद्रव्यवर्गणाके प्रदेश हैं'।

समाधान -- नहीं, क्योंकि, अवगाहनाकी अपेक्षा औदारिक शरीरकी स्थूलता बन जाती है। जैसे कि कहा भी है---

'कर्मणशरीरसंबन्धी द्रव्य-वर्गणाकी अवगाहना सबसे सूक्ष्म है। मनोद्रव्यवर्गणाकी अवगाहना उससे असंख्यातगुणी है। भाषाद्रव्यवर्गणाकी अवगाहना उससे असंख्यातगुणी है। तैजसशरीरसंबन्धी द्रव्य वर्गणाकी अवगाहना उससे असंख्यातगुणी है। आहारशरीरसंबन्धी द्रव्य-वर्गणाकी अवगाहना उससे असंख्यातगुणी है। औदारिकशरीरसंबन्धी द्रव्य-वर्गणाकी अवगाहना उससे

ओगाहणा असंखेज्जगुणा ति।' उत्तं च ---

पुरुमहमुदारुरालं एयट्ठो तं विजाण तम्हि भवं।

ओरालियं ति वुत्तं ओरालियकायजोगो सो१ (प्रा. पं. १, ९३। गो.जी.  
२३०. सूक्ष्मपृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणशरीराणां स्थूलत्वाभावात् कथमौदारिकत्वं? इति चेन्न, ततः  
सूक्ष्मतरवैक्रियकादिशरीरापेक्षया तेषां महत्त्वेन परमागमरुद्ध्या वा औदारिकत्वसंभवात्। मं. प्र., टी.)  
॥१६०॥

ओरालियमुत्तत्थं विजाण मिस्सं च अपरिपुण्णं ति।

जो तेण संपजोगो ओरालियमिस्सको जोगो२ (प्रा. पं. १, ९४। गो. जी.  
२३१. प्रागुक्तलक्षणमौदारिकशरीरं तदेवान्तर्मुहूर्तपर्यन्तमपूर्णं अपर्याप्तं तावन्मिश्रमित्युच्यते  
अपर्याप्तकालसंबधिसमयत्रयसंभवि-कार्मणकाययोगाकृष्टकार्मणवर्गणासंयुक्तत्वेन परमागम-रुद्ध्या वा  
अपर्याप्तं अपर्याप्तशरीरमिश्रमित्यर्थः। जी. प्र., टी.। तत्रौदारिकादयः शुद्धाः सुबोधाः। औदारिकमिश्रस्तु  
औदारिक एवापरिपूर्णो मिश्र उच्यते, यथा गुडमिश्रं दधि न गुडतया नापि दधिया व्यपदिश्यते  
तत्ताभ्यामपरिपूर्णत्वात्। एवमौदारिकं मिश्रं कार्मणेन। नौदारिकतया नापि कार्मणतया व्यपदेष्टुं शक्यम्  
अपरिपूर्णत्वादिति तस्यौदारिकमिश्रव्यपदेशः। एवं वैक्रियकाहारकमिश्रावपीति शतकटीकालेशः। प्रज्ञापना-  
व्याख्यानांशस्त्वेवम्, औदारिकाद्या शुद्धास्तत्पर्याप्तकस्य मिश्रास्त्वपर्याप्तकस्येति। स्था. सू. पृ. १०१.)  
॥१६१॥

अणिमादिर्विक्रिया, तद्योगात्पुद्गलाश्च विक्रियेति भण्यन्ते। तत्र भवं शरीरं वैक्रियिकम्।  
तदवष्टम्भतः समुत्पन्नपरिस्पन्देन योगः वैक्रियिककाययोगः। कार्मणवैक्रियिकस्कन्धतः समुत्पन्नवीर्येण  
योगः वैक्रियिकमिश्रकाययोगः। उक्तं च ---

विविह-गुण-इडिढ-जुत्तं वेउक्वियमहव विकिरिया चेव।

तिस्से भवं च णेयं वेउक्विकायजोगो सो३ (प्रा. पं. १, ९५। गो. जी.

२३२.) ॥१६२॥

असंख्यातगुणी है। कहा भी है --

पुरु, महत्, उदार और उराल, ये शब्द एकार्थवाचक हैं। उदारमें जो होता है उसे औदारिक  
कहते हैं, और उसके निमित्तसे होनेवाले योगको औदारिककाययोग कहते हैं ॥१६०॥

औदारिकका अर्थ ऊपर कह आये हैं। वह शरीर जबतक पूर्ण नहीं होता है तबतक मिश्र कहलाता है, और उसकेद्वारा होनेवाले संप्रयोगको औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं ॥१६१॥

अणिमा, महिमा आदि ऋद्धियोंको विक्रिया कहते हैं। उन ऋद्धियोंके संपर्कसे पुद्गल भी 'विक्रिया' इस नामसे कहे जाते हैं। उसमें जो शरीर उत्पन्न होता है उसे वैक्रियशरीर कहते हैं। उस शरीरके अवलम्बनसे उत्पन्न हुए परिस्पन्दद्वारा जो प्रयत्न होता है उसे वैक्रियककाययोग कहते हैं। कार्मण और वैक्रियक वर्गणाओंके निमित्तसे उत्पन्न हुई शक्तिसे जो परिस्पन्दके लिये प्रयत्न होता है उसे वैक्रियकमिश्रकाययोग कहते हैं। कहा भी है --

नाना प्रकारकेगुण और ऋद्धियोंसे युक्त शरीरको वैगूर्विक अथवा वैक्रियक शरीर

-----  
वेउव्वियमुत्तत्थं विजाण मिस्सं च अपरिपुण्णं च ।

जो तेण संपजोगो वेउव्वियमिस्सको जोगो१ (मु. मिस्सजोगो ।)

॥१६३॥२ (प्रा. पं. १, ९६ पाठभेदः । गो. जी. २३४.)

आहरति आत्मसात्करोति सूक्ष्मानर्थाननेनेति आहारः । तेन आहारकायेन योगः आहारकाययोगः । कथमौदारिकस्कन्धसम्बद्धानां जीवावयवानां अन्यशरीरेण हस्तमात्रेण शङ्खधवलेन शुभसंस्थानेन योग इति चेन्नैष दोषः, अनादिबन्धनबद्धत्वतो मूर्तानां जीवावयवानां मूर्तेण शरीरेण सम्बन्धं प्रति विरोधासिद्धेः । तत एव न पुनः सङ्घटनमपि विरोधमास्कन्देत् । अथ स्याज्जीवस्य शरीरेण सम्बन्धकृदायुस्तयोर्वियोगो मरणम् । न च गलितायुषस्तस्मिन् शरीरे पुनरुत्पत्ति विरोधात् । ततो न तस्यौदारिकशरीरेण पुनः सङ्घटनमिति ।

अत्र प्रतिविधीयते, न तावज्जीवशरीरयोर्वियोगो मरणम्, तयोः संयोग -

-----  
कहते हैं। और इसकेद्वारा होनेवाले योगको वैगूर्विककाययोग कहते हैं ॥१६२॥

वैगूर्विकका अर्थ पहले कह ही चुके हैं। वही शरीर जबतक पूर्ण नहीं होता है तबतक मिश्र कहलाता है। और उसकेद्वारा जो संप्रयोग होता है उसे वैगूर्विकमिश्रकाययोग कहते हैं ॥१६३॥

जिसके द्वारा आत्मा सूक्ष्म पदार्थोंको ग्रहण करता है, अर्थात् आत्मसात् करता है उसे आहारक शरीर कहते हैं और उसे आहारकशरीरसे जो योग होता है उसे आहारककाययोग कहते हैं ।

शंका -- औदारिकस्कन्धोंसे संबन्ध रखनेवाले जीवप्रदेशोंका हस्तप्रमाण, शंखके समान धवल वर्णवाले, और शुभ अर्थात् समचतुरस्त्र संस्थानसे युक्त अन्य शरीरकेसाथ कैसे संबन्ध हो सकता है?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जीवके प्रदेश अनादिकालीन बन्धनसे बद्ध होनेके कारण मूर्त हैं, अतएव उनका मूर्त आहारकशरीरके साथ संबन्ध होनेमें कोई विरोध नहीं आता है। और इसीलिये उनका फिरसे औदारिक शरीरकेसाथ संघटनका होना भी विरोधको प्राप्त नहीं होता है।

शंका -- जीवका शरीरके साथ संबन्ध करनेवाला आयुकर्म है, और जीव तथा शरीरका परस्परमें वियोग होना मरण है। इसलिये जिसकी आयु नष्ट हो गई है ऐसे जीवकी फिरसे उसी शरीरमें उत्पत्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध आता है। अतः जीवका औदारिक शरीरके साथ पुनः संघटन नहीं बन सकता है। अर्थात् एकबार जीवप्रदेशोंका आहारक शरीरके साथ संबन्ध हो जानेके पश्चात् पुनः उन प्रदेशोंका पूर्व औदारिक शरीरके साथ संबन्ध नहीं हो सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, आगममें जीव और शरीरके वियोगको मरण नहीं कहा है, अन्यथा उनके संयोगको उत्पत्ति मानना पड़ेगा।

-----  
स्योत्पत्तिप्रसङ्गात्। अस्तु चेन्न,१ (मु. पूर्वायुषा।) छिन्नपूर्वायुषामुदयप्राप्तोत्तरभवसम्बन्ध्यायुःकर्मणां२ (मु. तत्परित्यक्त।) परित्यक्तानुपात्तपूर्वोत्तरशरीराणामपि जीवानामुत्पत्त्युपलम्भात्। भवतु तथोत्पत्तिर्मरण पुनर्जीवशरीरवियोग एवेति चेदस्तु सर्वात्मना तयोर्वियोगो मरणं नैकदेशेन, आगलादप्युपसंहतजीवावयवानां मरणानुपलम्भात् जीविताच्छिन्नहस्तेन व्यभिचाराच्च। न च पुनरस्यर्षेः३ (मु. न. पुनरस्यार्थः।) सर्वावयवैः पूर्वशरीरपरित्यागः समस्ति येनास्य मरणं जायेत। न चैतच्छरीरं गच्छत्पर्वतादिना प्रतिहन्यते४ (अव्वाघादी अंतोमुहुत्तकालद्विदी जहण्णिदरे। पञ्जतीसंपुण्णे मरणं पि कदाचि संभवइ॥ गो. जी. २३८.) शस्त्रैश्छिद्यतेऽग्निना दह्यते वा, सूक्ष्मत्वाद्दैक्रियकशरीरवत्।५ (तत्प्राक्कालभाव्यौदारिकशरीरवर्गणामिश्रत्वेन ताभिः सह वर्तमानो यः संप्रयोगः अपरिपूर्णशक्तियक्तात्म प्रदेशपरिस्पन्दः स आहारककायमिश्रयोगः। गो. जी., जी. प्र., टी. २४०.) आहारकर्मणस्कन्धतः समुत्पन्नवीर्येण योगः आहारमिश्रकाय-योगः। उक्तं च -

-----  
शंका --- जीव और शरीरका संयोग उत्पत्ति रहा आवे, इसमें क्या हानि है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जिनकी पूर्व आयु छिन्न हो गई है और जिन्होंने उत्तर भवसम्बन्धी आयुको प्राप्त कर लिया है, फिर भी जिन्होंने पूर्व शरीर तो छोड़ दिया है, किन्तु उत्तर शरीर अभी प्राप्त नहीं किया है ऐसे भी जीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है। इसलिए जीव शरीरके संयोगको उत्पत्ति नहीं कह सकते।

शंका -- उत्पत्ति इसप्रकारकी भली ही रही आवे, फिर भी मरण तो जीव और शरीरके वियोगको ही मानना पड़ेगा।

समाधान -- यह कहना ठीक है, तो भी जीव और शरीरका संपूर्णरूपसे वियोग ही मरण हो सकता है। उनका एकदेशरूपसे वियोग मरण नहीं हो सकता, क्योंकि, जिनके कण्ठपर्यन्त जीवप्रदेश संकुचित हो गये हैं ऐसे जीवोंका भी मरण नहीं पाया जाता है। यदि एकदेश वियोगको भी मरण माना जावे, तो जीवित शरीरसे छिन्न होकर जिसका हाथ अलग हो गया है उसके साथ व्यभिचार दोष आ जायेगा। और आहारक शरीरको धारण करनेवाले इस ऋषिके संपूर्णरूपसे पूर्व (औदारिक) शरीरका त्याग नहीं होता, जिससे इसका मरण होवे?

विशेषार्थ -- छटवें गुणस्थानमें जब साधु आहारक शरीरको उत्पन्न करता है, उस समय उसका औदारिक शरीरसे सर्वथा संबन्ध भी नहीं छूट जाता है और भुज्यमान आयुका अन्त भी नहीं होता है, इसलिये ऐसी अवस्थाको मरण नहीं कहते हैं। केवल वहां कुछ जीवप्रदशोंका आहारक शरीरके साथ संबन्ध होता है।

यह आहारक शरीर सूक्ष्म होनेके कारण गमन करते समय वैक्रियक शरीरके समान न तो पर्वतोंसे टकराता है, न शस्त्रोंसे छिदता है और अग्निसे जलता है। आहारक और कर्मणकी वर्गणाओंसे उत्पन्न हुए वीर्यकेद्वारा जो योग होता है वह आहारक मिश्रकाययोग है।

-----

आहरदि अणेण मुणी सुहुमे अट्ठे सयस्स संदेहे१ (ऋद्धिप्राप्तस्यापि प्रमत्तसंयतस्य श्रुतज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशममाद्ये सति यदा धर्म्यध्यान-विरोधी श्रुतार्थसंदेहः स्यात्तदा तत्संदेहविनाशार्थं च आहारकशरीरमुत्तिष्ठतीत्यर्थः। गो. जी., जी. प्र., टी. २३५.)<sup>८</sup>

गता केवलि - पासं तम्हा आहारको जोगो२ (प्रा. पं. १,९७। गो. जी. २३९. णियखेत्ते केवलिदुगविरहे णिक्कमणपहुदिकल्लाणे। परखेत्ते संवित्ते जिणजिणघरवंदणट्ठं च।।

उत्तमअंगमिह हवे धादुविहीण सुह असंहणणं । सुहसटांण धवलं हत्थपमाणं पसत्थुदंय ॥ गो. जी. २३६,  
२३७.)<sup>१</sup>१६४ आहारयमुत्तथं वियाण मिस्सं च अपरिपुणं ति<sup>१</sup> जो तेण संपजोगो आहारयमिस्सको  
जोगो३ (प्रा. पं. १,९८ पाठभेदः । गो.जी. २४०.)<sup>१</sup>१६५

विशेषार्थ -- मिश्रयोग तीन हैं, औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियकमिश्रकाययोग और  
आहारकमिश्रकाययोग। इनमेंसे औदारिकमिश्र मनुष्य और तिर्यचके जन्मके प्रथम समयसे लेकर  
अन्तर्मुहूर्त कालतक और केवली समुध्दातकी कपाटद्वयरूप अवस्थामें होता हैं। वैक्रियकमिश्र देव और  
नारकियोंके जन्मके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्ततक होता है। आहारकमिश्र छटे गुणस्थानवर्ती जीवके  
आहारकसमुध्दात निकलते समय अपर्याप्त अवस्थामें होता है। इन तीनों मिश्रयोगोंमें केवल विवक्षित  
शरीरसंबन्धी वर्गणाओंके निमित्तसे आत्मप्रदेश-परिस्पन्द नहीं होता है, किन्तु कार्मणशरीरके संबन्धसे युक्त  
होकर ही औदारिक आदि शरीरसंबन्धी वर्गणाओंके निमित्तसे योग होता है, इसलिये इन्हें मिश्रयोग कहा  
है। परंतु इतनी विशेषता है कि गोम्मटसार जीवकाण्डकी टीकामें आहारकसमुध्दातके पहले होनेवाले  
औदारिकशरीरकी वर्गणाओंके मिश्रणसे आहारकमिश्रकाययोग कहा है और यहां पर कार्मणस्कन्धके  
मिश्रणसे आहारकमिश्रकाययोग कहा है। इन दोनों कथनों पर विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि  
गोम्मटसारकी टीकाके अभिप्रायसे आहारकमिश्र-योगतक औदारिकशरीरसंबन्धी वर्गणाए आती रहती हैं  
और धवलाके अभिप्रायसे आहारकमिश्रयोगके प्रारंभ होते ही औदारिकशरीरसंबन्धी वर्गणाओंका आना बन्द  
हो जाता है। कहा भी है---

छटवें गुणस्थानवर्ती मुनि अपनेको संदेह होने पर जिस शरीरके द्वारा केवलीके पास जाकर सूक्ष्म  
पदार्थोंका आहरण करता है उसे आहारक शरीर कहते हैं, इसलिये उसके द्वारा होनेवाले योगको  
आहारककाययोग कहते हैं ॥१६४॥

आहारकका अर्थ कह आये है। वह आहारकशरीर जबतक पूर्ण नहीं होता है तबतक उसको  
आहारकमिश्र कहते हैं। और उसके द्वारा जो संप्रयोग होता है उसे आहारकमिश्रकाययोग कहते हैं

॥१६५॥